प्रकाशक—
मन्त्री
श्रीआत्म जागृति कार्यालय
(बगड़ी मारवाड़)

मुद्रक—
जीतमल लूणिया
सस्ता साहित्य प्रेस
अजमेर (राजपूताना)

लागत से भी अल्प मूल्य।

खर्चे का अन्दाजन ब्योरा

छपाई	१५०॥)
कागज	९३॥)
व्यवस्था	६०)
अनुवाद	२०)
कुल (१००० प्रति के)	३२४)
लागत ।—)।	मूल्य ।=)

प्रभावनार्थ ।—)

प्रचार में सहायक होगी।

केवल सेवा भाव से अपव पुस्तक तयार कराके अमूल्य व अल्प मूल्य पर यह कार्यालय प्रचार कर रहा है। नाम धाकवद पुस्तक मँगाकर प्रभावना करें। प्रकाशित पुस्तका के नाम हैं—

१ आत्म जागृति भावना, पृष्ठ संख्या १२० मूल्य =) २ समकित स्वरूप भावना, पृष्ठ संख्या ४० मूल्य —), ३ विद्यार्थी व युवक की भावना पृष्ठ ४० मूल्य —) ४ मोक्ष की कुञ्जी भाग १ पृष्ठ ६६ मूल्य =), ५ धाए तीन पृष्ठ १६ मूल्य दो पैसे। ६ भाव अनुपूर्वि पृष्ठ ३२ मूल्य —) ७ मोक्ष की कुञ्जी भाग २ पृष्ठ ८८ मू० =) ८ आत्म बोध भाग १-२-३ पृष्ठ १८८ मू० ।=) ९ आत्मबोध भाग—३ पृष्ठ ८८ मूल्य =) १०, आत्मबोध भाग ३ काव्य विलास, पृष्ठ ३२ मूल्य —)।

मिलने का पता—
व्यवस्थापक
आत्म जागृति कार्यालय,
बगड़ी (मारवाड़)।

श्री आत्म-जागृति कार्यालय, बगडी (मारवाड)

निवेदन

जिस देश में उत्तम साहित्य का प्रचार होता है वह देश सब प्रकार के दुःखों से छूटकर सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है। भारत देश वह था जहां बाल (बालक) और गोपाल (वृद्धजन) सब अच्छे साहित्य के रसिक थे। आज उसी भारत में सौ में १० पुरुष और ३ स्त्रियें भी अक्षर ज्ञान तक ठीक ठीक नहीं रखतीं। उत्तम साहित्य की बात तो एक और रही, जो लोग साधारण रूप से पढ़ लिख सकते हैं वे भी प्रायः अपनी शिक्षा का सदुपयोग करते नहीं दिखाई देते। आज कल विकारी उपन्यास आदि बना साहित्य की वृद्धि हो रही है और कई लोगों की पठन शक्ति उनमें व्यय हो जाती है। भाजन आहार का पाचक है परन्तु कुपथ्य भोजन करने से रोग बढ़ते हैं वैसे ही गंदे उपन्यास आदि विकारी साहित्य के पढ़ने से लाभ के बदले हानि ही होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब साहित्य के पाठक ही थोड़े हैं तो फिर उत्तम साहित्य प्रचार की आवश्यकता ही क्या? बात यह है कि जहां पढ़ने वाले कम हैं वहाँ यदि उत्तम साहित्य का प्रचार किया जाय तो पाठकों की बुद्धि का विकास होता है और वे पाठक सत्कारित होकर शिक्षा प्रचार और जीवन सुधार कर सेवा कार्य करने में लग जावेंगे।

आज लाखों पढ़े लिखे आदमी जो दिखाई देते हैं उनमें भी देश, जाति और धर्म की सेवा करने की उच्च भावनावाले स्वयं सेवक कितने हैं? उत्तर स्पष्ट है। ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। इसी त्रुटि की पूर्ति के लिए स्थान स्थान में उत्तम साहित्य का प्रचार करने के लिये इस 'आत्म जागृति कार्यालय' की स्थापना की गई है।

द्वारा मिलकर आत्मा में सात्विक भावना पैदा होकर जीवन उन्नत बनता है। इसलिए तत्त्वज्ञान की पुस्तकें प्रकाशित की जावेंगी।

आरोग्यशिक्षा, बालशिक्षा, स्त्री शिक्षा, समाज-सुधार व तत्त्वज्ञान सम्बन्धी उत्तम पुस्तकें त्यागी व गृहस्थ उत्तम लेखकों से लिखवाकर अल्प मूल्य व अमूल्य रूप प्रचार करना इस कार्यालय के मुख्य ध्येयों में से एक है। इसकी सफलता माननीय त्यागी महात्माओं और सद्गृहस्थ विद्वानों की कृपा, सहायक प्रचारकों की उदारता, स्वयंसेवकों और पाठकों की सहानुभूति पर निर्भर है।

सब के सहकार की आवश्यकता है और ऐसी पवित्र भिक्षा ही के लिए स्वपर कल्याण, सुख श्रेय साधक पात्र आपके सम्मुख रखा जाता है। यथाशक्ति बुद्धि, शक्ति, सेवा व धन के बीज बोकर अक्षय लाभ प्राप्त करें। हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि हरेक स्थान में इस प्रकार संस्थायें स्थापित की जाकर उत्तम साहित्य का प्रचार किया जाय।

इस कार्यालय की ओर से जो पुस्तकें प्रकाशित होंगी वे सुन्दर और लाभदायक अवश्य होंगी, परन्तु उनका मूल्य सदा कम रखा जावेगा ताकि वे सर्व साधारण को सुलभ हो सकें। विचार तो यह है कि उनका मूल्य अधिकतर दो पैसे, आना, दो आना ही रखा जावे। प्राय चार आने के अन्दर अन्दर की कीमत की पुस्तकें तैयार की जावेंगी, सोलह पेजी एक फार्म का मूल्य दो पैसा।

निवेदक—

सौभागमल अमोलकचंद लोढा
तथा मगनमल कानेटा । } मन्त्री

श्री 'आत्म जागृति' कार्यालय,
बगडी (मारवाड़) वाया सोजत रोड

आत्म-जागृति ग्रंथ-माला के
ग्राहक बनने के नियम

ग्रंथमाला के ग्राहक दो प्रकार के हैं

(१) सेवाभावी ग्राहक और (२) अर्थदाता ग्राहक

(१) सेवाभावी ग्राहक के चार प्रकार हैं।

(१) अध्ययनप्रेमी ग्राहक—जो हमेशा कम से कम एक घंटा उत्तम साहित्य स्वयं पढ़ें और यथाशक्ति औरों को पढ़कर सुनावें।

(२) विद्यार्थी ग्राहक—जो विद्यार्थी हों और एक सप्ताह में कम से कम दो घंटा उत्तम साहित्य स्वयं पढ़ें और यथाशक्ति औरों को पढ़कर सुनावें।

(३) प्रचारक ग्राहक—जो इस संस्था की पुस्तकों के मिलने के बाद पन्द्रह दिन में संपूर्ण पुस्तक पढ़कर दूसरे ऐसे सज्जन को देवें कि जो पन्द्रह दिन में उसे पढ़कर ऐसे ही नियम के पालक अन्य किसी को उत्तरोत्तर देवें। यदि कोई ऐसा लेने वाला न मिले तो किसी सार्वजनिक संस्था में भेंट देवे। यदि संस्था न हो तो सार्वजनिक पुस्तकालय खोलकर इन पुस्तकों को धर दें और उसमें अन्य उत्तम साहित्य का भी संग्रह करें।

(४) सार्वजनिक ग्राहक—कोई भी पुस्तकालय पाठशाला कन्याशाला, समाचारपत्र, प्रधान गृहस्थ [illegible]।

सेवाभावी चारों प्रकार के ग्राहकों [illegible] इच्छानुसार मूल्य पर या अमूल्य [illegible] जावेगा।

अर्थदाता ग्राहक—जो इच्छानुसार सहायता हरसाल भेजते रहेंगे वे अर्थदाता ग्राहक गिने जायेंगे।

नोट—[illegible] ग्राहकों को हर चार महीने के अंत में आप जिस श्रेणी के ग्राहक हैं उसके नियम का ठीक पालन हो रहा है, ऐसा विवरण पत्र कार्यालय को अवश्य देना चाहिए। यदि छः मास तक कोई कर्तव्य विवरण पत्र नहीं आवेगा तो आपका उस श्रेणी से नाम अलग किया जावेगा। यदि यह संस्था उत्तम सेवा करती हुई अनुभवसिद्ध होवे तो शुभ [illegible] सज्जन इसकी खूब उन्नति करें व हर स्थान में ऐसी संस्थाएं स्थापित करें, यही नम्र प्रार्थना है।

विनीत

[illegible] अमोलकचंद लोढा }
तथा मगनमल कोठारी } मंत्री

श्री 'आत्म जागृति' कार्यालय,

बगड़ी (मारवाड़) वाया सोजत रोड।

प्रकाशित पुस्तकें

आत्म जागृति कार्यालय से प्रकाशित पुस्तकें

(१) आत्म जागृति भावना—इसमें भावना से चरित्र-बल प्रकट करके आत्मा की शक्ति का विकास हर हालत में करते रहने का मार्ग दिखाया गया है। बालक, विद्यार्थी, युवक, युवति, गृहस्थ, वृद्ध, विधुर, विधवा, साधु आदि सब के लिए उनकी अवस्था के अनुकूल अलग अलग लगभग २४ भावनाएँ हैं। परम हितकारी हैं, सब जाति, धर्म व अवस्था के मनुष्य के हमेशा नित्य नियम में पढ़ने योग्य हैं। लगभग एक सौ पृष्ठ की पुस्तक का नाम मात्र मूल्य दो आना।

(२) समकित स्वरूप भावना—यह परलोक कल्याण की इच्छा वाले आत्माओं को नित्य नियम में रखने योग्य है। आत्म जागृति भावना में से चुना हुआ विभाग है। लगभग चालीस पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य एक आना।

(३) विद्यार्थी व युवक की भावना—विद्यार्थी व युवकों की परम कल्याणकारी है, दिव्य महापुरुष बनने का सरल उपाय है। हरएक व्यक्ति को अवश्य पास रखना चाहिए। पृष्ठ चालीस के लगभग, कीमत केवल एक आना।

(४) समकित (आत्मबोध) प्रश्नोत्तर अर्थात् मोक्ष का [illegible] मार्ग [illegible]—अनेक शास्त्र व ग्रन्थों में से समकित के विषय का संग्रह करके इसमें परम दुर्लभ समकित [illegible] का सरल मार्ग बताया गया है। [illegible] आत्मा में [illegible] बोध हो सकता है। लगभग १२० पृष्ठ [illegible] का [illegible] चार आना। एक भाग [illegible]।

(५) बालगीत—यह बालकों के लिए सादा भाषा में आनन्द व शिक्षाप्रद गीतों की उत्तम पुस्तक है। सालह पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल आध आना।

(६) भावनानुपूर्वा—इसमें विस्तृत उत्तम प्रस्तावना है जिस में आचार्यवरों का आशय प्रमाद छोड़ने के हेतु इसकी शुरूआत करने का बताया गया है। बन सके वहाँ तक ज्ञान, ध्यान में ही चित्त लगाना श्रेयस्कर है। यदि यह न बने तो पचपरमेष्ठि के गुणों को प्रकट करने रूप क्रोधादि चार कषाय व अज्ञान क्षय की भावना पाच चक्रों में व्यवस्थित की है। इसीलिये इसका नाम अनुपूर्वी रक्खा गया है। यह त्रिगुण नवीनता है। अन्त मे शांति प्रकाश के रागद्वेष निवारण व आत्मानुभव के दोहे भी दिये गये हैं पचास पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य एक आना।

निम्न लिखित पुस्तकें शीघ्र प्रकाशित होने वाली हैं—

(१) बालपोथी, (२) जैन तत्त्व प्रश्नोत्तर, (३) नैतिक जीवन, (४) आरोग्य शिक्षा, (५) जैनों में नवजीवन।

उपरोक्त सब पुस्तकों में बढ़िया कागज सुन्दर छपाई और बढ़िया कवर दिये गये हैं, उपरोक्त सब पुस्तकों की साइज क्राउन सोलह पेजी है।

हमेशा के लिये इस कार्यालय की हर कोई पुस्तक कोई भी व्यक्ति प्रकाशित कर सकता है, कारण ज्ञान जीव का गुण है। उसे प्रकट करने के साधन सबके लिये समान हैं। सब जीवों को सम्यग्ज्ञान का प्रकाश होकर वे सच्चरित्र द्वारा परम सुख को प्राप्त करें यही भावना है।

व्यवस्थापक,
आत्म जागृति कार्यालय, बगड़ी (मारवाड़)

नम्रनिवेदन

एकबार ये पुस्तक मँगवा कर पढ़ें, विचारें, मनन करें और अंतरआत्मा को पूछें कि ऐसा ज्ञान स्वयं प्राप्त करना व औरों को प्राप्त कराना कितना जरूरी है। यदि हितकर मालूम पड़े तो उस प्रचार कर।

शोकबन्द पुस्तक मँगवा कर या प्रकाशित करा कर पुस्तकालय, पाठशाला, कन्याशाला, बोडिंग, विद्यालय, सभा, सम्मेलन, लग्न, करियावर आदि हर स्थान और अवसर में पूर्ण हृदय से प्रभावना करें।

आचार्य, गुरु, बड़े, माता, पिता, स्नेही के स्मरण में फिजूल खर्ची के स्थान में उत्तम पुस्तकें बाँटकर स्वर्गीय पवित्र आत्माओं का सुयश सर्वत्र फैला कर विवेक पूर्ण उदारता का उत्तम आदर्श उपस्थित करें।

यह कार्य आत्मा का निज का है, कारण "ज्ञान" आत्मा का गुण है "आत्मा ही ज्ञान है" और "ज्ञान ही आत्मा है"।

"दुखों का मूल अज्ञान है" और "सुखों का मूल ज्ञान है"।

यह कार्य अज्ञान नाश करके सत्य ज्ञान प्रकट करने का साधन है। जहाँ साधन उत्तम है वहाँ शीघ्र सिद्धि होती है।

श्रीआत्म-बोध

पहिला भाग

प्रकाशक
आत्म जागृति कार्यालय
बाली (मारवाड़)
वाया मोन्द रोड

प्रस्तावना

आत्मा मात्र मे ज्ञान भरा हुआ है—किसी को प्रकट रूप मे और किसी को अप्रकट रूप से। अप्रकट कोष (खजाने) का प्रकट में लाना ही पुरुषार्थी आत्मा का कर्तव्य है। "आत्म भान होना," यही आत्मोन्नति (विकास) का मार्ग है। आत्म ज्ञान प्राप्त के लिए प्रत्यक्ष रूप से सद्गुरु का उपदेश तो रामबाण औषधि है, परन्तु सद्गुरु का सयोग बड़ा पुण्योदय से मिलता है। स्थान २ पर तो ऐसा सयोग मिलना असम्भव ही है। इस लिए यह आवश्यक है कि जिस प्रकार राजा एक ही स्थान में बैठा रहता है और उसकी आज्ञाओं का प्रचार देश भर म होता है उसी प्रकार सद्गुरु क उपदेशो और उनका अन्तरस्फुरणाओं का उन्हींके शब्दों में भिन्न २ स्थानो में प्रचार किया जाय जिससे कि जिज्ञासुओं का ज्ञान और आत्मभान जागृत हो सके।

हम अपना बडा सद्भाग्य समझते हैं कि पूज्यपाद मुनि श्री स्वर्गीय दौलत ऋषिजी महाराज के शिष्य आत्मार्थी मुनि श्री मोहन ऋषिजी महाराज की डायरी (नित्य नोंध) हमें प्राप्त हुई है। इसम मुनि श्री का विशद विकसित आत्मा ने जो २ अनुभव किया है, स्वात्मा को लक्ष्य करके जो लक्ष्य वर्धी उपदेश धारा बहाइ है उसीका अवतरण है। इस डायरी म का कुछ भाग गत वर्ष गुजराती भाषा मे कलोल निवासी स्वधर्मी भाइ बेचाभाई प्राण लाल शाह ने "श्री तत्त्व-समूह" नाम की पुस्तक में प्रकट किया था। यद्यपि वह भाग मुनिराज न अपने सयमी (चारित्री)

जीवन को सम्बोधन करके लिखा था और उसकी भाषा भी गुज रातीं थी तथापि वे पुस्तक हमारे मारवाड़ी तथा हिन्दी भाषा भाषी बन्धुओं ने पढ़ी और वे मुग्ध होगये। हृदय स्पर्शी स्फुरणा क्या परिणाम नहीं लाती ?

कई एक बन्धुओं ने इस मण्डल (कार्यालय) को आग्रह किया कि मुनिश्रीकी सामनाए स्फुरणाओं को हिन्दी भाषा मे छपवा कर हिन्दी भाषा भाषियों को अपूर्व लाभ पहुँचाना आवश्यक है। कई भाइयो ने प्रकाशन का खर्चा देने की भी इच्छा प्रकट करके हमें और उत्साहित किया। अत हमने इस आत्म भान कराने वाली डायरी को हिन्दी भाषा म प्रकाशित करने का निश्चय किया और यह भी सोचा कि जैन साधु जीवन को सबोधन करके जो लिखा गया है उसके बदले क्या ही अच्छा हो यदि गृहस्थ जीवन सुधार के वास्ते ऐसा ही किया जाय ? इस पर से सर्व सामान्य के लिए उपयोगी आत्म जागृति कराने वाला ज्ञान इस पुस्तक म प्रकट करने म हम भाग्यशाली हुए हैं।

इस पुस्तक मे स्फुरणा विभाग के अतिरिक्त आध्यात्मिक काव्य छ काय सिद्धि, उपयोगी शास्त्रीय बोलचाल और विविध विषय रक्खे गए हैं जिससे कि इस पुस्तक को हर समय पास रख कर सामयिक आदि आत्म शुद्धि की क्रिया के समय भी सामान्यत सब काम चलाया जा सके।

इस ग्रथ में यदि कोई त्रुटियाँ हो तो सुज्ञ विद्वद्गण सुधार कर पढे और हमें सूचित करने की कृपा कर ताकि दूसरी आवृत्ति म अधिक शुद्धि वृद्धि कर सकें। जिन २ महानुभावों ने इस पुस्तक

निर्माण में हम लिखित, मूचित, आर्थिक और व्यवस्था विषयक सहायता दी है उन २ महाशयों का हम आभार मानते हैं।

इस ग्रंथ में लगा हुआ खर्च का हिसाब सविस्तार अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है। लागत मूल्य से कम दाम पर प्रचार करना और वसूल की हुई रकम को पुनः ज्ञान प्रचार में ही लगाना इस कार्यालय का नियम है। अतः साहित्य प्रेमी बन्धुओं से प्रार्थना है कि वे इस कार्यालय की पुस्तकें का अधिक से अधिक सख्या में खरीद कर प्रचार करें।

आभार

इस पुस्तक का अनुवाद ९५ पृष्ठ तक का श्रीमान् रिखबदासजी मास्टर ने किया है। इस के लिए हम उन के कृतज्ञ हैं।

प्रकाशक

सम्बोधन-विभाग

श्रीआत्म-ग्रंथ

आन्तरिक भावनाएं ! आत्म सम्बोधन !

हे आत्मन् ! बाह्य पदार्थों को पर (दूसरे) समझकर ममत्व-भाव छोड़, स्वस्वरूप पहिचानले । अनंत काल के पश्चात् अब यह अवस्था प्राप्त हुई है । इस अवस्था पर योग्य विचार कर । अनंत भव बीत गए । अरे ! यह भव भी बीत जायगा तो तेरे हाथ क्या आयगा ? पर पुद्गलों से अनंती बक्त परिचय किया पर आखिर उन्हें त्यागना पड़ा, इसलिये उन्हें धिक् ! धिक् ! !

जागता है तो दिन है, भले ही रात्रि क्यों न हो ! लेना हो तो लुट सकता है, सेवा करता है वही साथ आती है । वैतरणी और शिवरमणी दोनों तेरे स्वत के कर कमल में दासी की तरह अहर्निश सेवा कर रही है । दोनों के बीच में रह कर तुझे निरा बाध मुक्ति सुंदरी व्याहना है । यह अवसर व्यर्थ न जाय, ऐसा तू सदैव प्रयत्न कर ।

हजार की आशा रक्खेगा तो दस मिलेंगे, यथाख्यात के लिये प्रयत्न करेगा तो सम्यक्त्व प्राप्त होगा, जिन कल्पी की उम्मेद करेगा तो स्थैवर पद पायगा । चौदहवें गुण स्थानक की आशा रक्खेगा तो ४ था प्राप्त होगा । इसलिए बड़ी बड़ी आशाए रख । कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा ।

अमृत रस से भरे हुए कटोरे को हाथ में लेकर चलने वाले की तरह तेरी दृष्टि अन्यस्थन पर न जानी चाहिये । जायगी तो तू कगाल होजायगा । राह में सब तरह कांटे बिछे हैं, वे तेरे पांव में न चुभ, इसपर ध्यान रख और अनन्त दु खदायी विकलेंद्रियादि कांटों से तेरी रक्षा कर ।

धर्म-क्रिया के समय देव विचलित करने के लिए खड़ा है, ऐसा सोचकर स्थिर चित्त रख। आत्म कार्य साधता हुआ आगे बढ़। शयन के समय समीप कीलों का झाड़ है, इसलिए करवट लेते समय तुझे दुःख न हो, इस प्रकार यत्न पूर्वक लेट। आत्मधर्म की प्रतिलेखना कर।

तू इन्द्रों द्वारा पूज्य है, तुम महाराजा की महती सभा में पूर्ण विचार कर शब्दोच्चार करना है, इसलिए प्रिय, सत्य, हितकारी, समभाव दर्शित शब्दोच्चार कर।

जीवन निर्वाह के लिए कहीं तू आसक्त भाव से अनीति व असत्य धारी बन कर भगवान के मार्ग को भूल अपने आत्मधर्म से च्युत न हो जाय? इसलिए सचेत रह।

पर्वत पर से नेत्र मूँद कर चलने वाला मनुष्य गिर जाने से जितना पश्चात्ताप करता है, उससे भी अनन्तगुणा पश्चात्ताप आत्मधर्म से पतित होने वाले को करना पड़ता है, और वह पश्चात्ताप एक भव के लिये नहीं परन्तु अनन्त भव के लिये कारन होता है।

प्रतिकूल संयोगों को अनुकूल और अनुकूल संयोगों को प्रतिकूल समझना ही सच्चे समकिती की निशानी है। करोड़ों का ऋणी, जन्म कंगाल अपना ऋण चुकाने का प्रयत्न करते भी हार खावे और उसे राजा उसका ऋण चुकाने जितना द्रव्य भंडार में लेने का कहे और वह प्रमाद से न ले तो उसके समान हतभागी और कौन? उस हतभागी से भी अनन्त हत भागी वह आत्मा है कि जिसने 'अनन्त जीवों का ऋण" लिया है। उसे चुकाने के लिए यह मनुष्य भव प्राप्त हुआ है तो भी वह प्रमाद करता है।

संकट(कष्ट) आवें तब सहर्ष उनकी इच्छा पूर्णकर, उनसे डर मत। धन्य नरकवासी चतुर्थ गुण स्थानक के स्वामी को। तो तू तो ५-६ गुण स्थानक का अधिकारी है। नवीन कुछ नहीं होगा, पूर्व सञ्चित कार्य (कर्म) धीरे धीरे उदय भाव में आवें तो, तू उदार बनकर सब ऋण खुशी से चुका दे। अनन्त पुण्य योग से इस वस्तु की प्राप्ति हुई है, विशेष में सम्यक् ज्ञान और चरित्रावस्था की प्राप्ति जो दुष्प्राप्य है, वह तुझे प्राप्त है, तो अब तू खूब पराक्रम कर। समय बीत रहा है। चौथे आरे की तुलना में वर्तमान आयु अति अल्प है।

आज के मनुष्य ५-१०-२५ वर्ष की एक भव की सुख शान्ति के लिए अहर्निश मन, वचन और काया से प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु तुझे अनन्त भव के लिए सत्य और अविनाशी सुख प्राप्त करना है, इसलिए तू जितना आत्मभोग दे सके उतना थोड़ा ही है, अनन्त परिश्रम भी कर्म के हिसाब से अनन्त न्यून है।

साधुपना और श्रावकपना यही है कि, औदारिक शरीर सम्बन्धी आते हुए सानुकूल प्रतिकूल, इष्ट अनिष्ट, सयोगों में समता भाव रखना। जो सयोग दुनिया के जीवों को राग द्वेष के फन्दे में फसाकर विजय प्राप्त करते हैं, उन सयोगों को विजयी न होने देने योग्य श्रम करना, उसीका नाम साधुपना और उसीका छोटा अंश श्रावकपना है। भूत भविष्य और वर्तमान काल के अनन्त इन्द्रों के ऐश्वर्य और सुख एकत्रित करें तो उससे भी अनन्त गुना सुख सिद्ध के एक जीव को है। इसलिए सिद्धत्व की मनसा रख। किस समय आयुष्य का बंध पडेगा, कुछ खबर नहीं है। इसलिए एक समय भी आर्तरौद्र (अनीति अधर्म रूप पापमय) ध्यान में

मत विता। पूर्ण सावधानी रख। दिन रात के २४ घंटे है, उनमेंस एक एक मिनट भी आत्मोन्नति करने वाले दान, शील, तप और भावना म विता दे। चार वर्ष क लिए नहीं पर यावत् जीवन के लिए ऐसा अभ्यास क्रम चालू रख। अन्य की आकांक्षा मत कर आत्मबोध प्राप्त होन का अपूर्व आनन्द, समय यातते, अमृतपान का आनन्द, एकांत म आत्म विचार करत समय मिलनेवाली शांति की लहर का अपूर्व आनन्द, इस प्रकार क आनन्द सत्य स्वरूप में कब लूंगा? आज ही आयु पूर्ण होन वाला है, एसा समझकर आत्मा की आलोचना, आत्म निंदा, प्रतिक्रमणादि, प्रायश्चित, स्वाध्याय, ध्यान और १२ प्रकार की तपश्चर्या से सज्जित रख। जैसे आत्मभाव जंगल जाते पैशाब करते समय रहत हैं, वैस ही भाव उन पुद्गलों को उत्पन्न करने वाले मिष्टान्न अरोगते समय रख, अनन्त सिद्ध तेरा व्यवहार देख रहे हैं। असंख्य देव तथा इन्द्र तेरे बाल जीवन और उसमे करत हुए प्रमाद को देखकर हँस रहे हैं।

द्रव्य, वृत, पच्चखाण एवं चारित्र पूर्व समय म अनन्ती वक्त पालें, मेरु जितने रजोहरण और मुँहपत्ती के ढेर लगाये तो भी सार न निकला। वर्तमान मे तेरा जीवन भाव रूप स विता। नहीं तो यह जीवन भी द्रव्य रूप में व्यतीत हो जायगा। लिए हुए भार को उठाकर ली हुई पदवी का पालन कर। अंगीकृत वृतादि क मूल स्वरूप को ढूंढ, और आत्म कल्याण के विविध मार्ग निकाल।

सुवर्ण, चांदी आदि जड पदार्थ अपने मूल स्वभाव को नहीं त्यागते। तो तू तेरा समभाव वाला मूल स्वभाव क्यों भूलता है? कौन से पदार्थ ग्राह्य हैं और कौन से हेय (त्यागन योग्य)?

इसका निर्णय कर। सार क्या है और असार क्या है ? इसका पद पद पर विचार कर। विचार मात्र से या शाब्दिक आडम्बर से कार्य सिद्ध नहीं होगा। अध्यात्म ज्ञान–अध्यात्म विचार जब तक प्रवृत्ति में नहीं लाये जाते तब तक चोर का सेठ के भंडार का लूटना और सेठ के जागृत रहने के समान है। पुद्गल रुचित्याग "देहे दुक्खं महा फलं" शरीर को भोगादि में प्रवृत्त करने का विचार करेगा तो सहस्र गुने अशाता वेदनीय कर्म बंधेंगे।

आत्मरक्षा के उपाय

(१) धार्मिक क्रिया की वृद्धि करने के हेतु गुप्त जीवन और एकान्त स्थान पसन्द कर।

(२) स्वार्थी परिचय किसी से मत रख। स्वार्थी परिचय ही संसार बंधन, मोह, तृष्णा और दुःख है।

(३) सोते समय आज के भले बुरे कार्य की याद कर।

(४) व्यवहार जीवन बिताते समय भी कहीं तेरी स्वार्थ-वृत्ति अनंत जीव की घातक न बन जाय, इसका ख्याल रख।

(५) मन के लिए प्रसन्नचंद्र राजर्षि के समान अल्प समय में शुभाशुभ योग से नर्क और केवल दशा का चित्र नेत्रों के सामने ला। मन ही जीव का बंधन और मोक्ष का कारण है।

मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय,
मन जीते बिन आतमा, मुक्ति कहां से थाय ?।

× × ×

राज्य सभा म राना क पास मनुष्य जैसा व्यवहार करता है उससे भी अधिक सुंदर व्यवहार तीर्थंकरों और अनत केवलियों स ज्ञात इस संसार सभा में रख और ऐसा योग कि जिसम शोभा हो, आत्मा ही अपना शत्रु है, और आत्मा ही अपना मित्र है।

जब अशाता का उदय हो तब आत्मज्ञ सोच कि तेरी स्वत की ही अशाता का उदय है। शाता का उदय होता तो कोई दुख नहीं कर सत्ता। इसलिए प्राप्त हुए सयोगो का स्वागत कर और इमा म आत्म धर्म समझ। तेरी वस्तु तेरे स्वत के पास है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के सिवाय अन्य कोइ वस्तु तेरी नहीं है। स्ववस्तु में न्यूनाधिक करने वाला आत्मा सिवाय कोइ व्यक्ति नहीं। आज तक तूने मिथ्या कल्पनाएँ करके पर-वस्तु को अपनी समझकर अनत कर्म बाँधे और दूसरों से बधाये। वे त्याग दे। किसी व्यक्ति की उन्नति म तेरा आत्मोन्नति शामिल नहीं है।

अरे! तू तेरे मूल स्वभाव को पद पद पर भूलता जाता है। चेत! अनत काल इस प्रकार बिताया, इस भव के हेतु कुछ तो विचार कर! कि कहीं तेरा विचार मेरु क समान रजोहरण और मुँह पत्ति क ढेंग की "गामा" पूरी करने के का है? शरम!

व्यौपारी रात दिन पैदा करने की चिंता करते हैं। उसी प्रकार तू भी दिन प्रति दिन बारह प्रकार की तपश्चर्या, शास्त्रार्थ, आत्म उन्नति की चिंता कर। जैसे इज्जतदार साहूकार, "र्जदार होने से जब तक उसका कर्ज नहीं चुक जाता तब तक सुख से निद्रा नहीं लेता उसी प्रकार तू भी अनन्त आत्माओं का 'कर्जदार' है। तो उनका कज आत्म ध्यान लगा कर चुकाने का प्रयत्न कर।

क्रोडाधीश का इकलौता हाल ही का व्याहा हुआ पुत्र जब मर जाय तो उस दिन ऐश्वर्य के विपुल साधन होते हुए भी उस ओर सेठ की दृष्टि नहीं जा सकती। इसी प्रकार तुझे भी विषय को दबाने के वास्ते शुष्क (उदासीन अनासक्त) भाव से रहना आवश्यक है।

प्रत्येक कार्य में उदासीन वृत्ति, शांत गंभीर प्रकृति और शुद्ध व्यवहार रख। कष्ट (परिसह) के समय घबडा मत। उस समय सोच कि, कठिनाइयाँ ही आत्म-विकास की साधन है। आत्मा ही सच्चिदानन्द है तो दुःख होता है किसे? शरीर को शांति देने का लेश मात्र भी विचार मत कर, शरीर की चेष्टानुसार व्यवहार कर। पुद्गल का गुलाम मत बन। नित्य प्रति अनावश्यक खाना, पीना, सोना, बैठना, यह केवल पुद्गल की गुलामी ही है। चचल मन को स्थिर (वश) करने के लिए यदि उसकी शक्कर खाने की हो तो चिरायते की फकी ले। ठंडे पानी की इच्छा हो तो गरम और तीखे पानी का सेवन कर। ठंडी हवा की चाह हो तो उष्णता की आतापना ले। मिष्ट पुद्गल की इच्छा हो तो प्राप्त हुए पुद्गलो को इकट्ठे कर भोग। मन के विचार से विपरीत दशा में आत्मा को रमा।

शरीर को मेरा समझना चोरी है, रसास्वाद करना चोरी है, और कठोर भाषा बोलना भी कुल आत्म चोरी है। दुनिया की पौद्गलिक वस्तुओं की चोरी कर ६-१२ माह की कैद भोगते हैं, तो तू भी आत्म की चोरी करने से अनत काल तक ८४ लक्ष जीव योनि की भव भ्रमणता रूप कैद की शिक्षा भोगता है।

ज्ञान, ध्यान, के सिवाय तमाम समय व्यर्थ है, आत्मा के अनंत कर्म बंधन का कारण है।

स्वजन या आकर्षक व्यक्ति के साथ प्रेम पूर्वक बातें करना और आदर पूर्वक बर्ताव करना और किसी सामान्य व्यक्ति का अनादर करना, यह क्या खुशामद नहीं है? जहाँ खुशामद है वहाँ स्वार्थ है और जहाँ स्वार्थ है वहा संसार। फिर विषय, कर्म बंध, आश्रव, और दीर्घ संसार। तू अपनी आत्मा को न समझाते पहिले दुनिया को समझाने का प्रयत्न करता है तो यह तो अंधे का आरसी में मुँह देखना और बहिरे का गायनादि सुनने के समान है। स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, देश कथा, इन चारों कथाओं में से एक भी कथा करने वाला गृहस्थ को निरर्थक कर्म बंध होता है तो तुझे ऐसी बात करना, सुनने या पूछने का अधिकार किसने दिया? जैसी बातें सुनी जाती हैं वैसी ही विचार धाराएँ आती हैं। क्षण क्षण में भान भूल कर तू व्यर्थ कर्म बाँधता है।

कर्म बंध की व्याख्या

सुवर्ण मिट्टी मा आत्म कर्म का संबंध है। सुवर्ण को सुवर्ण रूप में लाने के लिए उसमें मिली हुई कुल मिट्टी दूर करनी पड़ती है। जब कुल मिट्टी दूर कर दी जाती है तब सुवर्ण अपना मूल स्वरूप प्रकाशित कर देता है। पूर्व काल की लगी हुई मिट्टी दूर करने और और नई मिट्टी लगने न देने तथा भविष्य में लगने वाली मिट्टी से बचाने वाले का इस परिश्रम के पुरस्कार में पगार देना श्रेष्ठ है। पगार देते हैं तभी नौकर काम करता है और सेठ का काम हो जाता है। आत्मा और कर्म का अनन्त काल से

सबन्ध है। इस सबन्ध को विच्छेद करने का प्रयत्न कर। प्रथम मिट्टी दूर करने की आवश्यकता है। मिट्टी शरीर में शरीर रूप से विद्यमान है। इसलिए प्रथम देह को तपश्चर्या से तप्त करना चाहिए। साथ में वह नौकर के समान काम करती है। इसलिए उसे पगार देने के समान आहार देना चाहिए। परन्तु पगार में सुवर्ण की कुछ कीमत नहीं लग जानी चाहिए। ज्ञान, ध्यान रूपी सुवर्ण शरीर से निकालने के लिए शुष्क आहार देना योग्य है। कर्म आत्मा के साथ रहा हुआ कूड़ा कचरा है। आत्मा की स्ववस्तु से अन्य वस्तु उसका नाम कर्म, आत्मा को स्वधर्म से च्युत कर दे वे कर्म। कर्म आत्मा को प्रतिकूल मार्ग पर ले जाते हैं। उदाहरण — एक आत्मा को मिष्टान्न खाने की इच्छा हुई। उसने वह इच्छा पूर्ण की। एक इच्छा पूरी की तो दूसरी इच्छा में जल सींचते ही वह विकसित हो जायगी, इसी प्रकार नई नई इच्छायें जगेंगी। वे आत्मा को अनिच्छा से भी पूर्ण करनी होंगी। इच्छा पूर्ण करने की मर्जी होती है वहाँ आरम्भ, द्वेष और भव भ्रमण है। इसलिए उत्पन्न हुए बीज को प्रतिकूल अग्नि से जला डाल। पौद्गलिक इच्छाओं की पोषना एक इच्छा के बदले अनन्त नई इच्छायें पैदा करने के समान है। और एक इच्छा को रोकना अनन्त इच्छाओं को रोकने के बराबर है।

× × ×

नाहि सुही देवता देवलोए, नाहि सुही पुढवी पइ राया।
नाहि सुही सेठ सेणावइए, एगंत सुही मुणी वियरागी॥

ये शब्द किसके हैं ?

अनन्त ज्ञानी प्रभु के, अनन्त ज्ञान में दिखे हुए, आप्त आगम में फरमाये हुए। देवता, चक्रवर्ती, और सेठ तीनों की अपेक्षा मुनि अनन्त सुखी हैं। देवता असंख्याता वर्षों के लिए सेठ ५०-६० वर्षों के लिए अपार ऐश्वर्य में भले ही सुख मानते हों, पर उनका जीवन फांसी की शिक्षा पाये हुए मनुष्य के समान है। फांसी की शिक्षा वाले को फांसी देने के पहले कितने ही दिनों तक मन इच्छित खाना पीना देते हैं और वह उसी प्रकार भोगता है। पर सेठ आदि तो भविष्य में भोगने की आशा से वर्तमान में भी नहीं भोग सकते। अचानक कालचक्र उसे उठा ले जाता है और आशा निराशा में परिणत हो जाती है। देवता, मरकर पृथ्वी आदि में उत्पन्न होते हैं। सेठ मर कर नरक या तिर्यंच में जाते हैं। (अन्त समय तक चक्रवर्ती बना रहे तो) अवश्य नरक में जाता है। अस्तु ! ये इस भव में भी सुखी नहीं और पर भव में भी इनके लिए अनन्त दुःख तैयार हैं। मुनि यहां इस लोक और वैसे ही परलोक में अत्यन्त सुखी हैं। अनन्त जीव देव आदि बड़े बड़ों को मरने से डर लगता है पर मुनिराज तो प्रति समय रटन करते हैं कि —

'जगत मरन से डरत है, मुझ मन बहुत आनंद।
कब मर हूं कब भेटहूं, पूरन परमानंद॥'

आनंद की सीमा है। जब सेठ आदि संसार की भोगोपभोग की इच्छा द्वारा सताये जाते हैं तब मुनि ऐसी इच्छाएं उत्पन्न ही नहीं होने देते। तृप्त भोजन किये हुए को आहार की इच्छा नहीं होती, उसी

प्रकारज्ञान रूप भोजन से तृप्त हुए भोजनी को (मुनि को) इन्द्रा रूपी क्षुधा नहीं लगती। मुनियों के आनन्द का पार नहीं, मुनियों के सुख का अंत नहीं। चक्रवर्ती अपने किसी राज्य पर, देवता किन्हीं देवियों पर, और सेठ ५–५० नौकरों पर शासन चलाते हैं, तब मुनि पृथ्वी, अप, बेइंद्री, तेइन्द्री नारकी, तिर्यंच, मनुष्य आदि ८४ लाख जीव-योनि में न जाने की विजय ध्वजा प्राप्त कर फहराते हैं। चक्रवर्ती के चक्रवर्ती, सेठ के भी सेठ और देव के भी देव कोई हैं तो मुनि ही हैं। तो हे आत्मन्! तुझे जो मार्ग प्राप्त है। उनका यथातथ्य रीति से पालन कर और अनंत सुखी भगवान ने तुझे फरमाया है उसी प्रकार तू सुखी बन। द्रव्य सुख-सेठ चक्रवर्ती और देव की पदवी का मुख्य जन्म दाता "मुनि धर्म" ही है।

"दया माता का खुला पत्र"

हे सुशील पुत्र!

तेरे जीवन और अज्ञान संसार के जीवन में अनंत गुणों का अन्तर है। जिस कार्य में अज्ञानी जीव क्लेश, दुःख, और अशाता मानते हैं उस कार्य में तुझे अत्यानंद मानना है। सेवा, परोपकार के पवित्र कार्य में ग्लानि भाव लाना, यह संसार में "मूढ संसारी" का धर्म है। तुझे तो उस समय सेठ, साहूक ज्यों भाग्योदय का दिन मानना है। संसारियों के जन्म मरण और लग्नादि शुभ कार्य अनंत पाप के कारण हैं कि जिन्हें वे मंगलीक मानते हैं। उधर उच्च या नीच का सेवा परोपकार प्रेम भाव के शुभ काम एक से एक उच्च पाये पर ले जाने वाले हैं। धन्य प्रभु! आपने सेवा

(वैयावच) का उत्तम फल दिखाया । धन्य ! धन्य ! नेत्र के सिवाय पुरा शरीर मुनिओं की सेवा (वैया वच) में लगाने वाले मेघकुमार को!

खून से भीगे वस्त्र को खून से साफ मत कर । हे ज्ञान जीव! लोहू वाला वस्त्र लोहू से साफ नहीं होता पर उसके लिये जिस प्रकार निर्मल जल की आवश्यकता है, उसी प्रकार हे आत्मन! आत्म देश में से अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करने के वास्ते, ज्ञानावरण दूर करने के वास्ते, सूत्र सिद्धान्त पढ़ने पढ़ाने और वीर वाणी को प्रकाशित करने की शीघ्र इच्छा रख । शरीर को सुख प्राप्त होने की इच्छा भोजन—स्थान, हवा आदि के विचार ज्ञान-वृद्धि में आवरण (बाधारूप) हैं और ये भाव अज्ञान की गांठ बांध कर शेख म दुबान जैसा कार्य करते हैं सो तू इन्हें 'सुख कर्ता' किस प्रकार मान बैठा है ? जल्दी प्रमाद छोड़। केवल ज्ञान प्राप्त करने वास्ते ही श्री वीर प्रभु ने १२॥ वर्ष तक अनार्य क्षेत्र में उग्र तपश्चर्या की तथा परिसह सहन किये थे और मौन धारण किया था । इष्ट खुराक खाने में और भोगादिक में प्रभु ने सुख न माना था, जो माना होता तो प्रभु को राजगद्दी त्यागने की क्या आवश्यक्ता थी ? वहीं इष्ट सात्विक पदार्थ भोग कर ज्ञानी व सुखी नहीं बन जाते ? ऐसे विचार मात्र भी अनन्त दुःख दायी विषय कषाय बढ़ाने वाले हैं । तू सोचता कि उपवा सादि करने से ज्ञान ध्यान नहीं बनेगा, शरीर शिथिल और अशक्त बन जायगा । ये विचार "एकान्त मिथ्यात्व" कहे हैं । खेत में बीज बोने से कास्तकार प्रत्यक्ष में भले ही एक बीज घटा हुआ समझ पर उसी बीज के थोड़े महीने के पश्चात् एक के सौ और सौ के हजार, लाख, क्रोड़ों की संख्या में ढेर लगेंगे । तो हे पुत्र ! तपश्चर्या, आय

म्बिल, उपवास आदि से प्रत्यक्ष रूप में औदारिक शरीर अशाता बेचैनी मानेगा, यह पुद्गल का स्वभाव है, पर उससे कुछ आत्म-धर्म की न्यूनता न होगी। तपश्चर्या से आत्म धर्म की लहर बढ़ती जावेगी और आंतरिक कर्म कचरा दूर होगा। जिससे ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होगा, तपश्चर्या ज्ञानावरणीयकर्म क्षय करने के वास्ते अकसीर इलाज है। (कृषिकार और खेती के न्याय) अनन्त आत्माएँ तपश्चर्या कर त्रिकाल ज्ञान प्राप्त कर सकी हैं। तपश्चर्या जैसे उपाय से क्या होना कठिन है ?

तेरी कल्पना विषय कषाय की जननी है,जिससे ज्ञानावरणीय कर्म अवश्य नये बढ़ते हैं। "जैसी विशेष तपश्चर्या, वैसी विशेष ज्ञान वृद्धि" के मुद्रालेख का स्मरण कर और अनंत उग्र आत्माओं के चरित्र को याद कर, ऐसी आशिष देकर मैं स्वस्थान को जाता हूँ।

❀ ❀ ❀

'आत्म ज्ञान'

(Most-Important)

अब सीमा होगई, अंत आगया, बहुत समय तक नरक की तीव्रता सहन की। अब कुछ भी बाकी न रहा। होना था वह होगया। बिगड़ना था वह बिगड़ गया। अब सिर्फ सुधारना शेष है। बहुत समय नींद में सोया अब तो जागृत हो और देख! अनन्त काल तक निंद्रा में लुट सके उतना आत्म धन लुटा दिया, अब तो रक्षा कर। अरे! कुछ न कुछ तो कर, क्या देखरहा है ?

क्या विचार करता है ? अरर ! चार गति वाले तेरा क्या होगा ?

कर्म नामक कसाई तुझपर विपाक फल के प्रहार करता है, अरे ! उससे डर। भाव क्रिया, भाव विचार, भाव प्रकृति, भाव व्यवहार, भाव ध्यान आदि सब क्रिया भाव (उपयोग) से कर ! भाव से करेगा तो 'भगवान' बनेगा, बिना भाव के की हुई क्रिया एक के बिना शून्यों जैसी है। इतनी सजा अनन्त काल तक भुगती तो भी क्या तू घबराया नहीं ? वर्तमान में तेरा जीवन केवल द्रव्य रूप है। तेरी द्रव्यता तुझे 'दरिद्री' बनाती है। अरे दरिद्री ! अब तो चेत ! कुछ विचार कर ! तेरा जन्म क्यों हुआ है? क्या ले बैठा है ? किस पद पर आरूढ़ है ? कौनसा पद किस लिये अंगीकार किया है ? उस पद को यथातथ्य रीति से पालता है या नहीं ? तो फिर भवति क्यों नहीं हुआ ? सचमुच आत्म स्वरूप समझा नहीं होगा। आत्म ज्ञान पैदा नहीं हुआ होगा। प्रवर्तित काल में क्या तू समझा है ? समझ कर क्या सकता है ? अरे ! अनंत भव खोये उसमें वृद्धि करने वाला यह भव बीत न जाय उसकी चिंता कर द्रव्य वृतादि पाल कर भले ही देवगति का अधिकारी बन जाय, पर उससे कुछ सिद्ध नहीं होगा। अनंत समय वह गति प्राप्त हुई, वहां से अनंत बार तू आया और तिर्यंचादि में उत्पन्न हो सीधा नरकादि में गया सा क्या फिर तुझे वहीं जाना अच्छा मालूम होता है ? वहां की अनन्त क्षुधा, तृषा, शीतलता, उष्णता, और परमाधामी द्वारा होती हुई मारपीट और वेदना सहनी तुझे अच्छी जँचती है ? जँचेगी ? इसका क्षण भर तो विचार कर और आत्मा को पलट कर सीधी राह पकड़।

धर्म क्रिया करने में क्या तुझे मास क्षमण करना है ? क्या तुझे मनो भर वजन उठाना है ? क्या तुझे उष्णता मे आतापना लेना है ? किसलिए भाव मे तू कुछ नहीं करता ?

सातवीं नरक की अनन्तवें भाग की वेदना मनुष्य लोक में नहीं । आत्मा ने नरक मे परवश अनन्त भावों मे अनन्तकाल तक अनन्त वेदना सहन की, उनके अनन्तवे भाग की वेदना भी यह शरीर सहन नहीं कर सकता । औदारिक शरीर का वधारण भी ऐसा है । कुम्हार के अवाडे में नरक के जीव को पुष्प शैया जैसी निद्रा आती है ऐसी अतुल वेदना नरक म है ।

इस अवस्था में समभाव से सहन किये हुए अल्प परिसह अनन्त भव घटाते हैं । जब नरक में परवश से सहन की हुई वेदना अल्प भव घटाने वाली है ।

हे आत्मा सानुकूल और प्रतिकूल तमाम परिसह यथातथ्य रीति से सह । परिसह है वहाँ लाभ, पारस, पूर्णता, पामरता का नाशकर्ता और प्रभुता का नाशकर्ता और प्रभुता का भी प्रभु है । इसलिए व्याकुल न होते सम भाव से सहन कर परिसह को दु ख समझाने वाला मोहनीय कर्म है । निर्मोही बन । स्वजन, सबन्धी, मित्र, शिष्यादि तथा पौद्गलित वस्तु पर से ममत्व भाव त्याग दक्षिण दिशा से मास उत्तर दिशा में ले जाना ससार-वृद्धि करता है तो फिर रसास्वाद की इच्छा कहाँ रही ? दही, दूध, दान और दूध पाक की भिन्नता कहाँ रही ? ऐसे रसास्वाद करने का विचार मात्र भी तुझे क्यों होना चाहिए ? शरम ! निर्मोही बन ॥

" निद्रा क्या है ?

अनात्म दशा, परात्मदशा, स्वघात दशा, म्वन्युन् दशा, जड़ दशा, निशामय दशा, तो ऐसी दशा ग्राह्य माननीय कैसी समझी जाय ? अरे अनंत त्याज्य निद्रा ! यह आत्म घातक दशा है इसलिये इसकी निंदा कर। अनंतकाल से तू आज तक इनका आदर किया और और इसी कारण तेरी भव भ्रमणता नहीं मिटी।

" वीर पास्य-पापी जीव जगे सोवे "

निद्रा लेने वाला पापी की गिनती में है। सचमुच प्रभु ने मुनि को चार घटे निद्रा लेने की आज्ञा की है। वर्तमान में यदि वैसा न हो सके तो ७ घटे का नियम रख। ज्यों ज्यों तू ज्यादा निद्रा लेगा उतनी ही तेरी अधिक अविक निंदा होगी। प्रभु की मर्यादित समय की आज्ञा के सिवाय निद्रा लेने का समय एकान्त निंदनीय है। कारण उस समय पूर्ण निद्रा नहीं आती। जिसके फल स्वरूप स्वप्नादि आल जजाल दृष्टि आते हैं। उसमें अशुभ अनिष्ट विचार धाराए कहीं की कहीं दौड़ जाती हैं। जिससे अनत कर्म बध जाते हैं। स्वप्नादि विचार से अनिष्ट परिणाम, दरिद्रता, प्रमादपन आत्मरक्षा की अन्तराय, ज्ञान विमुखता, और शरीर की शिथिलता बढ़ती है तो अब उसका साथ छोड़। निद्रा आराम नहीं पर हलाहल विष है, नशा है, मद्य पीने वाला व्यसनी मद्य को आराम देने वाला चीज समझता है पर बुद्धिमान की दृष्टि में वह दुःख सचय कर रहा है। उस माता पिता का मान नहीं रहता। वह नशा करने वाला जीव एक भव का दुःख उठा लेता है, पर निद्रा का भाव नशा निद्रा का करने वाला, अनत

दुःखी है । निद्रा के समय निद्रा लेने वाला भले ही आराम माने पर प्रभु मार्ग में तो "पाव समणे तिवुचइ" उसे पाप श्रमण कहा है । ऐसा विचार कर निद्रा त्याग ! निद्रा त्याग !!

तपश्चर्या महात्म्य

निश्चय ही क्षुधा के अनुसार अहार करने मे और उससे उत्पन्न हुए मल को निकालने में आत्म धर्म नहीं है । यह तो शुभाशुभ कर्माधीन है । कर्म न हो तो उभय क्रिया भी मिट जाय । वर्तमान काल मे उपवासादि करना उभय क्रिया मिटाने में सहाय्य, कर्ता हैं। उभय क्रिया पर अकुश सिद्धत्व दशा प्राप्त होने पर रह सक्ता है । वर्तमान में उपवासादि क्रिया सिद्धत्व दशा प्राप्त करने की निशानी है ।

आहारादि उपाधि सिद्धो के नष्ट होगई है । पर छद्मस्थो को यह उपाधि लगी हुई है। कर्मसत्ता के कारण आतारिक इच्छा आहार करने के वास्ते पूर्ण बल लगाती है, पर आत्मा के लिए आत्मीय वस्तु की परीक्षा कर परात्म, पर वस्तु की इच्छा रोकना ही महान् सिद्धत्व, परमात्मपद प्राप्ति करने का अग है, निशानी है। परेच्छा पुद्गलेच्छा रोकना ही परमात्म दशा है। इसीमे बीन वृक्ष की न्याय सिद्धता प्रकट होती है । जैसे अग्नि सुवर्णादि को विशेष तेजस्वी बनाती है वैसे ही आत्मधर्म को देदीप्यमान बनाने वाली मुख्य तपश्चर्या है ।

"क्षमा महात्म्य"

उपवासादि क्रिया प्रतिकूल है, क्षमादि क्रिया अनुकुल है। प्रतिकूल की अपेक्षा अनुकूल पर विजय प्राप्त करना महा कठिन है ।

आत्मा और कर्म समूह का सम्बन्ध क्रोधी से क्रोधी, मानी से मानी, और लोभी से कंजूस पना करने का है।

क्रोधी को जो क्षमा करते हैं तो वे लघु वीतरागी हैं। वन्ध बहुत गुण हो जायगे और अनुक्रम से बहुत २ वीतरागी होना सभव हो जायगा।

उपवास आदि क्रियाओं से भी क्षमा में विशेष महात्म्य मान गया है। इस पर अत करण मे विचार करते ज्ञात होता है कि आहारादि इच्छा बाहर रूप मे काम करती हैं। कषायादि सूक्ष्म रूप से काम करती हैं। काया को वश करना सरल है पर मन को वश करना कठिन है। इसी न्याय से आहार, कषाय, समझ।

"जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जीण।
एग जीणेज्ज अप्पाण एस से परमो जओ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ९

उपरोक्त वाक्य अनत प्रभु के ज्ञान में से, अनत आशय से, अनत जीवों के हितार्थ फरमाया हुआ है।

चैतन्य का अनन्त काल से पर से प्रेम है, जिससे वर्तमान मे वह पर से प्रेम करता है तो स्वाभाविक ही है। दुनिया के जीव उदर पूर्णार्थ २४ घटे बराबर प्रयत्न करते हैं। पन्द्रह रुपये का सिपाही पन्द्रह रुपये के लिये लड़ाई मे जाता है और अपने जीवन का बलिदान करता है। आत्मधर्म की प्राप्ति करने के वास्ते ऐसा आत्म भोग करने वाले कितने बार पैदा हुए होंगे? सिपाही की आत्मा पन्द्रह रुपये के लिये कितनी हिम्मतवर और देह से मोह उतारने वाली है!" इस अपेक्षा से तुझ क्या करना उचित है इसका विचार कर।

छद्मस्थावस्था में वीतरागन, ससारो में सिद्धित्व, अज्ञानी में सर्वज्ञता और मनुष्य में महानता छिपी हुई है।

हे मोक्षार्थी ! तू समझ गया है कि तेरी दशा मिट्टी मे भरे हुए, लिपटे हुए सुवर्ण के समान है। तो तुझे उसे दूर करने के उचित उपाय ढूंढना चाहिये। उपाय ढूंढ मिट्टी हटा मूल स्वरूप देख।

आत्मधर्म —क्रोध, मान, माया, और लोभ नहीं। राग, द्वेष, भय, शोक हास्य, रति, अरति, नहीं। स्त्री, पुरुष नपुसक नहीं मोर पीट वेदना नहीं। किन्तु—

आत्मगुण —क्षमा, निराभिमानता, सतोप, समभाव, निर्मोही निराकार, सिद्धस्वरूप, वीतरागत्व परपुद्गलत्यागी, आत्मार्थी, पना, ये ही आत्मिक गुण हैं।

आत्मशक्ति —अनत बल, अनत वीर्य, अनत पुरुषार्थ, पराक्रम, तथा अनत ज्ञानी, अनत दर्शी, अनत चरित्री और अनत तपस्वीपना। ये सब आत्म शक्ति हैं।

आत्म-सबोधन

(Caution to Soul)

जागृत हो, प्रमाद त्याग, उपयोग पूर्वक क्रिया कर।

परलोक-यात्रा

(Most Important)

मृत्यु समय की अनत वेदना। ओहो ! उस वेदना की सीमा।

इस वेदना की कहीं दाद, फर्याद कोई सुनने वाला है ? उसकी कोई दवा है ? कोई मंत्र, तंत्र, जादू है ?

नहीं, नहीं, नहीं, अपने किये का फल अकेला ही "रोते २" दीन दयामय मुँह से असह्य होने पर भी तू ही सहन कर।

अहा ! अन्य के लिये उपार्जित किया हुआ पाप-कर्म और उसका फल तो तुझे अकेले ही को सहना होगा—हाय पास बैठे हुए स्वजन, कुटुम्बी और अनेक हृदयों को जला कर एकत्रित किया हुआ द्रव्य कुछ भी काम नहीं आसक्ता। उलटे वे सब तेरी आत्मा के शत्रु ही हैं। निर्दय काल को कुछ भी शरम या डर नहीं। वह तो अपनी नीचता अधूरा न रखते पूर्ण रीति से बजाता है। हे मोक्ष के अभिलाषी ! इस शरीर के असख्य प्रदेश में से जीव निकलता हुआ कितनी तीव्र वेदना सहता है ? जिसकी कुछ गिनती कोई भी कर सक्ता है ? गिनती तो यही कि अनंत वेदना, अनंत दुःख, त्रास, हाथ पैर का नसों का खिचाव। जिसमें प्रदेशों का निकलना बड़ा दुस्तर है। आत्मा के प्रदेश निकलते समय अनंत वेदना जीव के कुल अवयवों मे होती है। जिसमें वह अशक्त बन जाता है। कुछ भी बोल नहीं सक्ता। या कुछ भी कह नहीं सक्ता। मुंह में किसी ने बलात्कार से डाट लगा दिया हो, ऐसी स्थिति हो जाती है। जीभ होते भी बोल नहीं सक्ता। अहा ! उस समय का भयंकर वेदना, भयानक परिस्थिति, भयंकर डरावने चित्र, त्रास ! जुल्म ! प्रभु मुझ ऐसी वेदना से बचा। इसलिये हे आत्मार्थी ! तूने जिस पद को अंगीकार किया है उस पर तो खूब बल, वीर्य, पराक्रम फोड कर पाल कि फिर तुझको जन्म नहीं लेना पड़े और ऐसी भयानक मृत्यु तुझे न सतावे।

हे आत्मा ! आनद मान कि ऐसा उत्तम समय तुझे प्राप्त हुआ है। इस अवस्था म तू जो धारे वह कर सक्ता है। मोक्ष मे यहा से सीधा नहीं जा सक्ता तो एकावतारी होने के लिये तू स्वय शक्तिमान है, नाना प्रकार की अनत वेदनाए मिटाने में समर्थ है, तो प्रयत्न कर। उत्कृष्ट मार्ग स्वीकार। आत्म प्रदेश निकलते समय का और स्नेही जन के अंतिम समय का दृश्य तेरे नेत्रों के आगे ला और चेत।

समय का मूल्य

आख मूदकर खोलने में असख्यात समय निकल जाते हैं, उनमे से " एक समय भी हे गौतम ! तू व्यर्थ मत खो" ॥ ऐसी आज्ञा श्री महावीर प्रभुने अपने प्रियतम शिष्य गौतम को दी है। तो हे आत्मा ! अगर तू महावीर स्वामी का छोटा, प्रिय, अनुयायी बनने की इच्छा रखता है, तो गौतम जैसा बन। मिनटों की तेरी आयु चारो तरफ से लुट जाने वाली है। दुख, मृत्यु और भय-भ्रांत-दशा के दावानल मे रहकर भी तू तेरी कौनसी शक्ति पर निर्भर रह कर चुप बैठा है ? एक समय की भी जहां प्रभु के शासन में कीमत कूती गई है वहा तू मिनटों और घंटों निद्रा मे, बातों में, प्रमाद में खोने की हिम्मत किस प्रकार कर सक्ता है ? सैकडो भव बाद तुझे फिर ऐसा अवसर प्राप्त होगा। ऐसा तुझे मालूम होता है ? तेरी मिनटो की आयु होते भी तेरा पुरुषार्थ तुझे कूडे में से रत्न देगा परन्तु इतना पराक्रम फोड़ कुडे मे स रत्न लेन की तेरी इच्छा कहा है ? पामर ! चेत ॥

गिनता में हैं ? तेरी करणी एक के बिना शून्य जैसी व्यर्थ है। हा हे मोक्षाधिकारी। मोक्ष प्राप्त करने को तैयार हुए उम्मीदवार! तू तेरी रिद्धि-सिद्धि का त्याग कर। जितनी शीघ्र हो सके उतनी आत्म प्रवृत्ति जल्द अंगीकार कर। पूर्व-सचित कर्म दल का पश्चात्ताप द्वारा नाश कर। स्वच्छ हो, प्रतिदिन आगे बढ़। और मोक्ष किस कार, किस तरह प्राप्त हो सके ऐसी सदैव माला जप।

सेर पर सवा सेर

औदारिक शरीर दिन रात नित्य नये २ मिष्टान्न और सत्व खाता है और जिसमें से मल मूत्र पैदा होता है उस का देने की मालिक का भयंकर आज्ञा देता है। शहर या सभा म, रात को या वर्षा की झड़ी में, करोड़पति या चक्रवर्ती को चाहे जैसे बड़े प्रसंग पर हुक्म करता है कि हे मानव! हे गुलाम! मेरे मल मूत्र को फेंक दे, नहीं तो मैं तुझे त्रास दूँगा। उसके गुलाम को हजारों काम छोड़ कर उसका शरीर रूपी सेठ का हुक्म—स्वयं उसीको पालन करना पड़ता है। अरे स्वार्थी शरीर! दस रुपये सेर का मिष्टान्न और पाँच रुपये सेर का शर्बत तुझे पिलाने पर भी ऐसा विचित्र हुक्म देते तुझे शरम नहीं आती? सेर पर सवा सेर अवश्य रहते हैं, तू निश्चय समझ। रावण के लिए राम पैदा हुए थे। उसी प्रकार तेरे लिए में (काल मृत्यु) पैदा हुआ हूँ। विशेष अभिमान करेगा तो तुझ से अनंत गुनी शक्ति द्वारा मैं तुझे परास्त करूँगा। तू पाँच दस रुपया का पौद्गलिक सत्व चूसता है, तो मैं तेरे खुद का (शरीर का) अमूल्य सत्व चूसता हूँ। जब यह सत्व मैं चूस लूँगा तब तू स्वयं सत्व चूसना बंध कर देगा। तू सत्व

चूस कर, मल मूत्र फेंक देने की आज्ञा करता है तो मैं भी सब देह पिंडों को फेंक देने की आज्ञा करूँगा । भले ही तू चक्रवर्ती हो, सेठ हो, या कंगाल का पिंड हो, लाखों का पालक हो, या लाखों का नाशक, प्रत्येक का सत्व चूसकर फेंक देने की आज्ञा दूँगा फिर भी न मानेगा तो तुझे जला डालने की आज्ञा दूँगा । फिर भी अगर तेरी हड्डी आदि का कुछ भी अंश रह जायगा तो तुझे समुद्र में फेंक देने की आज्ञा दूँगा, जिसमे तेरा नाम निशान भी नहीं रह सकेगा । उस समय तेरा अभिमान मन का मन में ही रह जायगा । सेर पर सवा सेर का विचार कर । तेरी कड़ाई त्याग । जब से तेरा जन्म हुआ है तब से ही मैंने तेरा पीछा किया है।

नवजीवन मंत्र

हे चिदानन्द ! लिख २ कर ग्रन्थकर्ता नहीं बन सके । बड़ी २ बातें करने से महत्ता नहीं बढ़ सकी । परिणाम (भाव) की प्रभुता से प्रभुत्व प्राप्त नहीं होगा । विचार मात्र से वीतरागी पन प्राप्त नहीं होगा । उपदेशक बन उपदेश देने से सुगति का का अधिकारी नहीं हो सका । दूसरों का सामान्य जीवन देख कर तुझे तेरे जीवन पर संतोष नहीं करना चाहिये । तू तेरी आत्मा को सब से छोटी समझ कर भी दूसरों की अपेक्षा उच्च कार्य करने में अप्रमादी बन । बाह्य आडम्बर से आत्मिक लाभ की प्राप्ति नहीं होगी । विचारानुसार व्यवहार न हो तो ऐसे सद् विचार किस काम के ?-परिणामों (भावों) के अनुसार प्रवृत्ति न हो तो उन परिणामों का मूल्य क्या ?-

 वर्तमान में पाश्चिमात्य फिलोसोफर्स की

ज्ञान रूप में है, किन्तु यह ज्ञान के वर्ताव न हो तो वह कैसा है? जैसे कि—"चोर सेठ का भंडार लूटता है और सेठ आँख से देख रहे हैं। पड़ोसी सेठ को जागने की सूचना करता है। सेठ कहते हैं कि मैं जागता हूँ" जिस प्रकार सेठ की जागृत अवस्था मिथ्या है, वैसे हा ज्ञानाधिकारी यन अज्ञानी के कार्य करे तो ज्ञान प्राप्त किया भी मिथ्या है।

> जीवन का मन्त्र क्या है ? याद कर
> अनन्त दुःखप्रद मक में खोया था कि स सार में
> कायम करना क्या यह मूल तो नहीं गया ?

'यह रुचिकर और यह अरुचिकर है' ऐसा शब्द कोप तेरे हृदय में न रहना चाहिये।

तेरी सब वस्तुएँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप, इनकी तो बराबर पहिचान की है न ? पहिचान ले अनादि काल से देखने की शक्ति पर तिमिर पर्दा पड़ रहा था, अब पड़दा नहीं है। सब तरफ प्रकाश है। इसलिये तेरी वस्तुओं को तू बराबर पहिचान ले। पकड़ ले। और फिर गिर न जाय, इसकी चिंता रख। यथाशक्ति उनका सदुपयोग कर।

देवलोक के रत्न महल, वहाँ की अप्सराए, उनके नाटक, गान, तान, भोग विलास, और वहाँ की सुखद सामग्री पर जब तक घृणा की दृष्टि से तू दृष्टिपात नहीं करेगा, उन सुखों पर लात मारने खड़ा नहीं होगा, तब तक तू क्या मोक्ष का अधिकारी है ? नहीं। जब तक तू वैसे सुखों का अंत करण से विरोध न करेगा तब तक तू मोक्ष का अधिकारी नहीं गिना जायगा। तो

फिर मनुष्य की दुर्गंध मय पौद्गलिक इच्छा वासना तरे "नव-जीवन" के स्वप्न में भी कैसे उठ सके ?

जब तक तूने पुद्गल (खाना, पीना, सोना, बैठना, इत्यादि) के भोगोपभोग की इच्छाए उपशात नहीं की, तब तक तू पुद्गलानदी का तरह पुद्गल परावर्तन में फँस कर ससार चक्र में भटकेगा।

रस्सी पर चलने वाले मदारी को जितना डर है, उससे विशष डर सम्यक्त्व धारण कर आत्मा को प्रभुमार्ग रूप रस्सी पर चलने मे हैं। तलवार पर चलना, लोहे के चने चबाना, तराजू मे मेरू पर्वत तौलना, नख से पर्वत खोदना इत्यदि कठिन है। इनसे भी विशेष कठिन प्रभु मार्ग रूपी तलवार पर चलना है। उपरोक्त उपमाए भगवान श्री महावीर प्रभु ने अनत ज्ञान मे देख कर लगाई हैं। ये उपमाए जबतक तूने मान्य न की और विजयी बनने का प्रयत्न नहीं किया तबतक तू मुमुक्षु की गिनती में नहीं है। सत्य स्वरूप प्राप्त कर। धीरे-धीरे मोह दशा छोड।

मेघरथ राजा ने एक जीव के लिये अपने शरीर को मास की तरह तोल दिया था। इसीका नाम दया ! वे तो चौथे गुण स्थानक के अधिकारी थ। तू ५-६ ठे गुण स्थानक का दावा करता है तो तुझे जीव दया के लिये कौनसा उत्कृष्ट कार्य करना चाहिये? तुझे तेरे शरीर पर कितनी निर्ममता, निर्मोहता रखनी चाहिये ? जहा शरीर पर ममत्व भाव है, वहाँ आरभ है और जहा आरभ है, वहा छ काय का नाश है।

गज सुकुमाल जी ने, ४९९ शिष्यो ने, मैतारज मुनिराज ने, धर्म रुचि अणगार ने, ढढणजी ने, धनाजी ने, और महावीर स्वामी ने शरीर पर से कितनी ममता उतार दी थी ? धर्म रुचि

को तो कीड़ियों की दया के लिये कड़वे तुम्बे का पान करना पड़ा था। तुझे तेरी दया पालना है तो तुझे मिले वैसे संयोग सम भाव से सह लेने चाहिये। यही तेरा आत्मा को शोभाप्रद है।

शरीर की साता चाहने वालों की अंतमें दुर्गति होती ही है, यह निश्चय से समझ। शरीर पर से मोह हटा। इस मंत्र को दिनरात आराध और पूर्व जीवन का बदला 'नवजीवन' धारण कर।

तू द्रव्य लिंगी है या भाव लिंगी? प्रभु की आज्ञा में है या बाहर? तेरा चरित्र आत्मार्थी को रुचे ऐसा है कि नहीं? अनंत जीव तुझसा क्रिया कर तिर गए होंगे! मोक्ष साधु पुरुष तेरे जैसा ही समाचारित्र पालते होंगे? देवता तेरी प्रशंसा करते होंगे कि हँसी करते होंगे? खूब विचार कर, शुद्ध अवलोकन कर।

मिथ्यात्वी संन्यासी धुनी तापते हैं, औंधे मुँह लटकते हैं। जब वे भी ऐसी क्रिया करते हैं तो तुझे तो शिवरमणी वरना है। तुझे कितनी उत्कृष्ट और शीघ्र क्रिया करनी चाहिये? नमक मिरच बेचने वाला व्यापारी लखपति होने की इच्छा रखता है तो तुझ तो केवल ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते, उस आशा के लिये कितना उद्योग करना उचित है?

परिणाम से नहीं पर प्रवृत्ति से ही उपरोक्त क्रिया करने के भाव द्रव्य रूप में तेरे आत्म धर्म में रंग जाने चाहिये, बिलकुल लबालब भर जाने चाहिये। जल पर लकड़ी का प्रहार करने से दो भाग हो जाते हैं परंतु फिर आपही आप मिल जाते हैं। इसी तरह कषाय के समय प्रतिपक्ष नरम हो या गरम, पर तुझे तो जलवत

वन क्षमा माग लेना चाहिये। तभी तू मोक्ष-मार्ग का अधिकारी बनेगा।

स्वजनों पर से मोह हटा। उनके साथ अल्प परिचय रख। अल्पतम मोह भी आत्मा को हानि-कर्ता है। जैसे छोटे से छोटा छिद्र भी स्टीमर को हानि कर्ता है।

जब तू तपश्चर्या करता है तब क्षुधा होते भी आहार पर मन से भी इच्छा नहीं करता। अगर इच्छा उत्पन्न हो जाती है तो उसे ज्ञान बल से रोक लेता है इसी तरह यही समझ कि यावत् जीवन पर्य्यंत मैंने कषाय न करने की "भीष्म प्रतिज्ञा" की है, इस प्रतिज्ञा को सदैव याद रख। प्रतिज्ञा पालन करने मे सदा प्रस्तुत रह, तपश्चर्या को पारणे तक की सीमा है, कषाय के पारणा की सीमा नहीं, उपवास में कदाचित् अशक्ति निर्बलता, उदासीनता आती है। ऐसे भाव कषाय तपश्चर्या में नहीं होते। बल्कि इससे तो प्रसन्न वदन, शरीर मे खून की वृद्धि, और मुँह पर तेज आता है, शरीर की तपश्चर्या से यह तपश्चर्या अनंत लाभदायी है। क्रोड पूर्व की आहार की तपश्चर्या कषाय तपश्चर्या की समानता नहीं कर सकती। समय मात्र की कषाय सब तपश्चर्या को नाश कर देती है। हास्य, रति, अरति, भय, शोक और दुर्गन्द को व्रत समझ। इन व्रतों मे दोष न लगे ऐसा प्रयत्न कर। हरी, कच्चे जल आदि पर पैर गिरजाने से तू पश्चात्ताप करके प्रायश्चित लेता है। उसी प्रकार उपयोग रहित कषाय, राग, द्वेष, उदय मात्र में आ जायें तो पश्चाताप करके प्रायश्चित लेकर शुद्ध बन। हरी की हिंसा पर हिंसा है। कषाय स्वहिंसा है। तेरे जीवन के सैंकडों त्याग इकट्ठे कर, इन

के ढेर की अपेक्षा कषाय के त्याग का महत्व विशेष है। कहाँ कौड़ियों का ढेर और कहाँ एक रत्न की तुलना?

अनंत भव के बाद जौहरी का लाइन हाथ लगी है। रत्न और पत्थर का परीक्षा कर। रत्न को गृहण कर और पत्थर को पड़ा रहने दे।

किसी भी तरह तेरे कारण से अन्य आत्मा कषाय करने लगे ऐसे तमाम कार्य रोक।

तुझसे मास क्षमण का तपश्चर्या, शीत उष्ण आतापना, उस मत्सर के परिसह सहन न हो सके तो कषाय परिसह ही जीत। इसका अनंत लाभ क्यों खोता है?

मानसिक, वाचिक और कायिक कुल प्रवृत्तियाँ उपयोग सहित कर। उपयोग सहित बोल, क्षण क्षण, मिनट मिनट सोते जागते, बराबर आत्मपरीक्षा (Self examination) करता रह, बिना कहे काल तुझे गफलत का हालत में ले जायगा। आयुष्य कर्म का बंध करना पड़ेगा। इसकी कुछ भी खबर नहीं पड़ती। इसलिये आर्त रौद्र रहित कुल समय अच्छे कार्य में बिता।

तेरे शरीर के समीप विषधर नाग दिन रात चक्कर काट रहा है। उसके पास आसुरी शक्ति है। उस शक्ति से वह तेरे मानसिक विचार अशुभ विषय की ओर खींचता है, और उसकी ओर तुझे फिराता है। इसलिये उस विषधर को ढूंढ। उसका मतलब तुझे पतित करना है। 'शरीर को सुखी बनाओ' ऐसी उसकी नित्य ध्वनि है।

सब अनंत सिद्ध छद्मस्थ थे। वे उस पद को प्राप्त कर चुके,

तो क्या तू सिद्ध नहीं हो सकता ? तेरे जीवन में पुरुषार्थ की ही कमी है ।

पुरुषार्थ, पुरुषार्थ की भव्य ध्वनि अहर्निश तेरे कर्णगोचर होते भी तू प्रमाद त्यागने की चेष्टा नहीं करता । प्रभु ' श्री वीर " के साम्राज्य में पुरुषार्थी ही पूज्य बने हैं । उसका कारण ढूँढे तो उन महा पुरुषों का पुरुषार्थ ही दृष्टिगत होगा, श्री वीतराग के मार्ग में जहां तहां पुरुषार्थी की ही बिगुल बजती है । किंतु तू सुन नहीं सकता । इसका कारण तेरी अघोर नींद है । निकट भवी तो आलस्य त्याग बिगुल सुनते ही एकदम उठ खड़े हुए हैं। तो हे वीर पुत्र ! तूभी उठ । तेरी आत्मा का सूर्य अभी चमक रहा है। मोक्ष मुकुट तेरे सिर पर रखने का समय आ गया है तो आये हुए समय का स्वागत कर ।

उपदेशामृत

अनंत काल से जो विषय कषाय मय संसार की परिस्थिति चली आती है । उसे ज्ञानी ही दूर कर सकते हैं। पांचवें आरे का यह खूबी है कि पाप कार्य विषय, कषाय, संसार आदि बढते देर नहीं लगती । बाल्यावस्था निर्दोष है । पर बिना सुशिक्षा के युवावस्था दोष का घर है । जैसे केली के वृक्ष से या कांदे में से एक के बाद एक तह (परत) निकलती जाती है वैसे ही संसारी के संसार बंधन एक के बाद एक बढते जाते हैं। और संसारी इसीमें आनंद मनाते मालूम होते हैं । संसार का स्वभाव जन्म मरण को बढाने वाला है । संसारी संसार के बंधन बढ़ाने को तैयार हैं तो त्यागी संसार को जड मूल उखाड फेंक देने का प्रयत्न कर रहे हैं । आ-

काश, जमीन म जितना अंतर है, फरक है, उससे विशेष अंतर व फरक त्यागियों के व भोगियों के जीवन में है। ससारियों का जीवन रात के समान काला है पर त्यागियों का जीवन पूर्णिमा के चन्द्र जैसा है। प्रथम जीवन एक था पर अभी अन्य के साथ फस रहा है। एक हो तो कुछ विचार भी कर सकें। जहा दो हो वहा बगड़ना सभव है। अस्तु राजा थोडे हैं, रक विशेष हैं। रत्न थोड हैं, पत्थर विशेष हैं। साक्षर अल्प हैं, मूर्ख विशेष हैं। यह न्याय तुम्हारी चक्षु को सूर्य से विशेष प्रकाशित कर रहा है। आत्मार्थी ही विचार सक्ते हैं।

" विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतग आयुष्य यह तो जल की तरग
पुरदरी चाप अनग रग क्यों राचत यहाँ क्षण का प्रसग ?

अनत वक्त मनुष्य देह मिलो, आर्यक्षेत्र मिला, श्रावक धर्म, चारित्र सब कुछ मिला। विशेष म राजा, प्रधान, सेठ और सेना पति आदि पदवियां भी अनत वक्त मिलीं, पर सार नहीं निकला। जैन धर्म मिला। उत्तमोत्तम चरित्र की भी प्राप्ति हुई तो भी दुःख के लवमात्र का अत भी न हुआ। वर्तमान में जैन धर्म, श्रावकपना, और साधुत्व प्राप्त हुआ है तो इसका उपयोग करलेन से ही मनुष्य देह की सफलता है। अनत पुण्योदय से यह अवसर प्राप्त हुआ है तो इस अवसर को बचाले। दमडी की साग बिगडती है तो दिन व्यर्थ जाता है, केरी का अचार बिगड़ता है तो सारा वर्ष व्यर्थ जाता है। कुजोड़ (अनमोल युगल) से सारा जीवन व्यर्थ चला जाता है पर यह मनुष्य देह बिना सुकृत्य के निष्फल गया तो एक भव नहीं पर अनत भव निष्फल चले जाते हैं। तुम्हारा वर्तमान

जीवन कर्म शत्रु के साथ हिल मिल गया है । उसे तुम सहर्ष भेट ते हो ? अरे मूर्खों ! सर्प को गले में डाल चमेली के हार की शोभा मान रहे हो ? रे बालजीवो ! इन कर्मों ने तुम्हें अनत वक्त पतित किया है अरे ! तुम्हें एक कौडी के अनतवे भाग की क़ीमत में बेचा है । नर्क का अनती भूख, ताप, प्यास, सहन करने की इच्छा तुम क्यों करते हो ? यह तुम्हें मार डालेगी । एक वक्त प्रखर गर्मी मे खुले पैर चल देखो । दो दिन भूखे रहो फिर तुम तुलना करो कि कौनसी वेदना बढती है ? रे बाल जीव ! मनुष्य भव साग था प्रचार नहीं कि जो बिगडने पर फिर मोल ले लिया जाय ।

फासी की शिक्षावाला दैवयोग से छूट जाय तो उसे अत्यत प्रसन्नता होती है और वह फिर फासी न मिले ऐसे सुकृत्य हमेशा करता रहता है वैसे ही तुम्हे भी नरक की अनत फासी भुगतना न पड़े । इसलिये अभी से सुकृत्य करते रहो ।

(१) राह मे चलते समय करुणायुक्त भावों से जीवों को देखता चल । क्योंकि विकलेंद्रिय जीवों के रक्षा करने से बच जाने से अनत भव सुख मिलता है ।

(२) राह मे चलते मिर्च का धुआँ तेरे चर्म चक्षु को स्पर्श न करले जिससे तू सावधान होकर चलता है और उस मार्ग से जल्द भगता है इससे अधिक जल्द राह में स्त्री समुदाय रूपी विषैली हवा जहा-तहा जाती आती हो वहा चल । उस समय तेरी चमचक्षु खोल कर चल, जिस से यह धुआँ तुझे अशाता न देसके । मिर्च का धुआँ एकाध घंटे व दिन के लिये दु खदायी है, पर स्त्रियों को विषय विकार रूपी विष मय धुआँ अनत काल के लिये दु ख दायी हैं ।

(३) गड़ सड़ते मद्य व मरते हुए पशुओं की दुर्गन्धि सहन होने में नाक के आगे वस्त्र लगाने में जितना हित समझते हो उससे भी अधिक सैण्ट पर रात ता कर नाक के आगे रख सुगंध लेने की इच्छा का अनन्त गुनी अहितकर समझो ।

(४) स्वाद रहित अन्न उतना दुखदायी नहीं, शरीर का ताप आदि उतना दुखदायी नहीं। इसमें अनन्त गुने दुखदाई इन परिसह को दूर करने के मनोभाव हैं। जिसे विष समझते हो वह सचमुच विष नहीं है पर जिसे अमृत समझते हो वह विष है।

(५) सर्प के काट खाने का या सिंह, व्याघ्र, हिंसक प्राणियों द्वारा मारे जाने की भावना लाने वाले मनुष्य की मृत्यु नहीं होती, परन्तु जो मनुष्य विषय भोग को अमृत समझता है उसकी ऐसी भावना ही उसकी मृत्यु है। सिर्फ संकल्प विकल्प में ही अनन्त दुख भरे हुए हैं और ऐसी प्रवृत्ति से अनन्त बक्त मृत्यु के दुख उठाये हैं, तो साक्षात विषय भोग करने वाले की कौनसी गति होगी ?

(६) अग्नि दाह, सर्प डँसने, पर्वत से गिरने और सिंह के भक्षण करलेने से तो एक ही समय मृत्यु होती है पर विषय भोग की इच्छा करने वाले अनन्त जन्म, मरण, आधि, व्याधि के जन्म दाता बनते हैं।

(७) राज्य के अपराधी होने से एक वर्ष कैद की शिक्षा मिलती है, परन्तु जो आत्म धर्म का अपराधी होता है उसे अनन्त बक्त नरक निगोद में कैद और फांसी की शिक्षा भुगतनी पड़ती है। एक लाख मनुष्य पर विजय पाने में जितना गौरव है उससे भी जो आत्मा सिर्फ अपनी आत्मा को ही वश करने में विजय पाता है

अनत गुना विशेष गौरव प्राप्त करता है (उ. अ. ९) ससार में माने जाने वाले कुटुम्ब, परिवार, पैसे माल मिल सक्ते हैं, परतु मनुष्य जन्म और आयुष्य की एक सेकड भी मोल नहीं मिल सक्ती इसलिये तुझे अपने ऐसे पवित्र मनुष्य जन्म सुधारने का किस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये इसका विचार कर।

८—रे बाल ! काग उडाने के लिये चिंतामणि रत्न मत फेंक।

९—काल का प्रभाव छद्मस्थ को केवली, भोगी को त्यागी, ससारी को सिद्ध और रक को राजा करता है। नीम के फल (निमोली) कडुवे, इमली खट्टी आम, खट्टा, तरबूज फीका,सिरनी तूरी होती है पर ये फल भी ऋतु आने पर मीठे, मधुर और स्वादिष्ट हो जाते हैं। यह मूल स्वभाव और काल प्रभाव है—पर आधुनिक जीवन कि जो बाल्यकाल से बिलकुल भिन्न (समभाव दशा रहित) अर्थात् विपरीत हो गया है। चाहिये तो था ऐसा कि आधुनिक जीवन विशेष समभाव वाला बने। एकन्द्री फल का भी समय आन पर सुदर रूप मे परिवर्तन हो जाता है तो मनुष्य जो कि पचेद्रिय का स्वामी है उसके जीवन में क्रमश कितनी सुदर भावनाए, शील-गुण आदि आने चाहिये ?

१०—भरे समुद्र में चलती हुई जहाज के छिद्र पड जाने पर या रातको चोर के आने पर जो सचेत न हों, अगुना सड जाने पर जो न कटावें, वे जितने लापरवाह और स्वहित के हानिकर्ता हैं उससे भी विशेष वह है जो जान पर भर जान लेने पर भी किसी प्रकार की तैयारी नहीं करता है, क्रिया अनुष्ठान करने में प्रमाद करता है। वह अपनी आत्मा को भयकर आफत में डालता

है। राजा के कानून तोडने वाले को कैद या फासी की ही सजा मिलता है पर श्री महावीर सम्राट् की आज्ञा का उलघन करने वाले को जन्म, मरण, विलख विलख कर करना पडते हैं।

११—दुनिया की पौद्गलिक वस्तुए गुप चुप उठा लेना चोरी है, पर छ काया की हिंसा करना उससे भी अनत गुना विशेष चोरी है।

१२—रत्नद्वीप म जाकर रत्न न ले, देव वर दे और न ले वह मनुष्य कितना पुण्यहीन है ? पर सच्चे आत्म धर्म को पाकर भी जो आत्माए मनुष्यदेह को सार्थक नहीं करती व आत्माए उससे भी अनत गुनी पुण्य हीन हैं।

१३—आम, ककडी, इमली म नमक, मिर्च भरकर स्वाद से खाता है, तो हे स्वाद करने वाले पेटार्थी ! एक रत्ती भर मिर्च तू अपने नेत्र में तो आज, क्या अनुभव होता है ? तेरे एक जीव के सतोषार्थ असख्य निरपराधी जीवों के प्राण लूटने का तुझे क्या हक है ? कौन से भव म मुक्त होगा ? स्नान के लिये गरम पानी करता है तो हे शांति चाहने वाले शीतलनाथ ! पानी मे असख्य जीव हैं उन्हे तू अग्नि म उबालता है उन जीवों का काया तुझसे अनत गुनी कोमल है तो तू एक दिन बर्तन म बैठ पानी के मुआफिक उबल कर अनुभव ले कि वेदना होती है या नहीं ? तुझमें उन जीवों की अपेक्षा अनत गुनी शक्ति है तो भी तू त्रास पाता है तो उन जीवों क त्रास की कुछ कल्पना भी है ? कभी ककड़ी मच मच खाता है तो हे शौकीन ! तू तेरी ढाई मन की काया का एक भाग सिंह या व्याघ्र के मुँह म रख कर तो देख क्या मजा आता है ?

कँपकँपी छूटती है कि नहीं ? ऐसी कँपकँपी कक्डी के जीवों को तेरे मुँह के लगने से नहीं छूटती होगी ?

१४—आजकल बहुत गर्मी पडती है, इसलिये विशेष स्नान हों तो ठीक । अरे साता के पुतले ! गर्मी में भैरू भवानी के शरीर तप रहे हैं । उन्हें पाडे बकरे के रुधिर की अपेक्षा मनुष्य रुधिर से स्नान करना अधिक पसंद है, तो तू तेरा कुछ खून देकर माता को स्नान करा । क्या मालूम होता है ? अल्प सुख के लिये अनंत जीवों की हिंसा मत कर ?

१५—दाल, साग, मे मिर्ची नहीं, अरे ! ओ ! ! क्या हुआ ? आंखे फूट गई थीं ? ले तेरा सिर ! आदि वाक्य बाण छोड कर थाली फेंक उठ जाता है, अरे रस गिर्द्धी ! ऊपर से नमक मिर्च लेने में तुझे क्या स्वाद आता है ? अरे यह तो समझादे ? अरे स्वाद के गुलाम ! तेरी हड्डी का चूर्ण मेरी माता को अत्यंत प्रिय है तो तू उसके आहार को स्वादिष्ट बनाने के वास्ते तेरी हड्डी का चूर्ण दे दे । क्या दे सकेगा ? चमड़े की जीभ के स्वाद के वास्ते असख्य गूंगे प्राणियों के वध करने का कसाई कृत्य तू क्यों कर रहा है !

१६—अन्न यही विष्ठा, और विष्ठा यही अन्न, तो दुनिया मे घृणित वस्तु कौनसी है ?

१७—हे शौकिन ! बूँट को कीलें, व एडी लगा कर पहनने में, तथा ऊंची दृष्टि रखकर चलने में ही तू खुश रहता है, पर भाई ! इससे कीडी आदि की क्या दशा होती होगी ? किसी दिन इसपर विचार किया है ? उन प्राण विदारक बूँट पर चलने की अपेक्षा श्रेष्ठ है कि तू तलवार की धार पर चलना सीखे ।

१८—सूर्य भगवान का तीक्ष्ण प्रकाश इतना तेजोमय है कि

सब विश्व को दिन भर दिये की आवश्यकता नहीं लगती पर उस तीक्ष्ण प्रकाश को नाचीज (मामूली) बादल आच्छादित हो ढक देते हैं। जिससे जगत् पर प्रकाश लुप्त हो जाता है पर सूर्य तो अपना प्रकाश वैसेही फक रहे हैं। इसी न्याय के अनुसार आत्मा पर कर्म के बादल के आवरण आ जाने से आत्मा का नूर ढक जाता है, किंतु जिसमे आत्मा का अक्स (औजस-तेज) तो त्रिकाल म भी नहीं जाता–इसलिये हे पुरुषार्थी ! जो तुझे आत्म सिद्धि प्राप्त करना हो, तुझे अनंत सुख मय भूमि में जाना हो तो शौक मात्र स्वाद मात्र प्रमाद मात्र का त्याग कर। यहां अनिष्ट कर्म बादल है। ये कर्म बादल दूर रहेंगे तथा तेरी आत्मा में दिव्य ज्योति प्रकाशित हो जायगी कि जिसकी मदद से तू आत्मिक अनंत सुख प्राप्त करेगा ?

चोर का कुछ भाग काठ म,

१ काष्ठ तथा पैर को भिन्न समझता है। अनुभव करता है।

२ काष्ठ को दुःख दाई समझता है। अनुभव करता है।

३ काष्ठ से छूटने की तीव्र भावना रखता है तथा वैसा प्रयत्न भी करता है।

४ क्षण क्षण भर में उसे शल्य रूप समझता है—उससे मुक्त होने की राह देख रहा है।

जितनी देर काष्ठ से अलग रहता है उतना ही सुख समझता है।

६ अपने स्वभाव के प्रतिकूल विभावमय दशा का अनुभव करता है।

७—जड़ में या चैतन्य में तुझे क्या लेशमात्र भी भिन्नता मालूम हुई है ?

८—चोर को सभी बातों का ज्ञान है, तुझे नहीं।

९—शरीर का सम्बन्ध काष्ठ की तरह बिलकुल भिन्न है—तुझे ऐसा कैसे मालूम होता है ?

१०—तुझे क्या नहीं दिखता ? अन्यत्वपना ?

११—शरीर को स्त्री, व पुत्र के समान भिन्न समझते हैं, वे ज्ञानी हैं और स्त्री पुत्र को अपना मानते हैं वे मिथ्यात्वी हैं। शरीर को अपना समझना महामिथ्यात्व है। समदृष्टि को स्त्री पुत्र के समान शरीर भी भिन्न दिखता है।

१२—भिन्न समझे वह आत्मा ससार से भिन्न है। जो भिन्न नहीं समझे तो उनकी आत्मा ससार में शरीर की तरह जड़ है।

१३—देह व आत्मा को एक समझने वाला अनंत ससारी, मिथ्यात्वी और कृष्ण पक्षी है। देह—आत्मा को भिन्न समझने वाला परत ससारी भव्य सम्यक्त्वी और शुद्ध पक्षी है।

१४—अभवी को शरीर प्रत्यक्ष में भिन्न नहीं दिखता, भवी को शरीर प्रत्यक्ष भिन्न दिखता है।

१५—काष्ठ और शरीर की भिन्नता का चोर को जो विचार आता है वही विचार शरीर से भिन्नपने का तुझे करना आजाय तो तू सम्यक्त्वी हो जाय।

१६—शरीर सग से निकट भवी लज्जा पाते हैं

१७—थोड़ा भाग कष्ट में से छूटने में आनद होता है तो सारी कवच वाला हालत मे छूटने में कितना अनहद आनद होता है तो सारी कवचवाली ... से छूटने में कितना आनद हो।

१८—सेड़ा, लार, लोही, पीप आदि पाव इन्द्रियों के मल नष्ट होने से कितना अनहद आनद होता है। तो ऐसे विकारी शरीर के ही नष्ट होने स कितना आनद होवे ?

१९—कैदखाना कैदी चोरी कैदी गति म
शरीर आत्मा विषयविकार शरीरधारी जाव

२०—चोर का तरह तुझ भी शरीर से ग्लानि आनी चाहिये।

२१—चोर का बडी पर राग नहीं रहता। उसी प्रकार तुझे भी शरीर पर राग नहीं रखना चाहिय।

२२—ताक्ष्ण नाक के उपयोग से दवा के मिक्स्चर को भिन्न समझते हैं। उसी प्रकार शुद्ध ज्ञान और उपयोग द्वारा आत्मा व शरीर की भिन्नता का अनुभव हो सक्ता है।

२३—ये अगोपाग मुझसे भिन्न हैं, किन्तु अनादि की एकता के कारण अन्यत्वता दृष्टि गत नहीं होती।

२४—एकत्वता वहा अनतता है। जहा अनेकत्वता वहा आदि है।

२५—शरीर के आधार से आत्मा है कि आत्मा क आधार से शरीर है ?

२६—शरीरभाव वहा ससार, आत्मभाव वहा असंसार, शरीरभाव वहा बंध, आत्मभाव वहा मोक्ष।

२७—तोता स्वर्ण के पिंजरे को तोड कर उड़ जाने के लिये चिंतित है, तुझे शरीर से छूटने के लिये चिंता हुई है ?

२८—विलोने से छाछ, मक्खन भिन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार तुझ शरीर की भिन्नता नहीं दिखती, तो भी रजघुले के अनुसार अविश्रात परिश्रम कर, तो भिन्नता मालूम होगी ही।

१३—सतीत्व वहा व्यभिचार नहीं, व्यभिचार वहा सतीत्व नहीं। क्योंकि।

१४—व्यभिचार वह विभाव है और सतीत्व स्वभाव है।

१५—पुद्गल संग है यह आत्म कुशील अर्थात् व्यभिचार है।

१६—सीता का हरण हुआ था। वह रावण के ताबे में थी। तो भी उसका हस्त स्पर्श नहीं कर सका।

१७—रावण के महल में होते भी राम को जपती। रावण के समझाने पर भी सीता रावण की न हुई।

१८—अन्त रावण हारा। राज्य खोया, और मारा गया—सीता और राम दूजी मिले।

१९—

सीता	रावण	राजमहल	हरण होना
आत्मा	विषयभोगादि	शरीर	अज्ञानरूपी विभाव दशा

पति	जपना	राम
शुद्धस्वरूप	स्वस्वरूप रमणता	मोक्ष

२०—आत्मरूपी सेठ, कालरूपी चोर, असाता वेदनीय रूपी कुत्ते रोग, वेदना कुत्तों का भोंकना, मोह रूप निद्रा, कुत्तों का उपकार मानने के बदले दवारूप डण्डा लेकर सेठजी मारते हैं तो भी वे परोपकारी कुत्ते बार बार भोंकते हैं। सेठ लकड़ी मार मार कर थक जाते हैं पर कुत्ते अपने कर्तव्य भोंकने में नहीं थकते। यह अमर्यादित दशा कब छूटेगा ?

२१—तू बार बार पुद्गल की इच्छा रखता है। मोह रखता है। पर वे तुझे समय समय पर त्यागते हैं।

२२—चार गति यह पुद्गल पर्याय है। आत्मा स्वद्रव्य से सब जगह समान है।

२३—आत्मा ससार मे या सिद्ध अवस्था में मूल स्वरूप से समान है।

२४—पानी स्वच्छ है। रगीन शाशी मे भरने से रगीन पानी दिखता है। आख स्वच्छ है, रगीन चश्मा लगाने से सब रगीन दिखता है। बाकी पानी और आख मूल स्वरूप मे कायम है।

२५—आत्मा / पानी, कर्म / शीशी } एकमेक होने का अनादि काल का स्वभाव है। शीशी पानी को अपने रग सा बना लती है। सिद्ध को क्या सुख ?

१— कुए का मेढक समुद्र का माप कैसे निकाल सक्ता है ?

२—पूर्ण स्वरूप अपूर्ण की समझ मे किस प्रकार बैठ सक्ता है?

३—अधा घुग्घू सूर्य प्रकाश को कैसे जान सक्ता है ?

४—सम्यक् दशा क सुख भी न समझ सके तो सिद्ध के सुख कैसे समझ सक्ते हैं ?

५—श्रेणिकादि असरय सम्यक्त्वी जीव नरक म किस प्रकार सम भाव मे रहते होंगे ? जब चौथे गुणस्थान का स्वरूप भी न समझ सके तो सिद्ध के सुख किस प्रकार समझ सक्ते हैं ?

६—तीर्थकर प्रभु भी मोक्ष सुख का वर्णन नहीं कर सके।

७—सिद्धता यही पूर्णता।

८—मच्छ जन्म लेते ही तैरता है वैसे ही सम्यक्त्वी का स्वभाव तैरना ही है।

९—सोचना लिखना छोड़, कर्मतोड़, निवृत्ति जोड़।

१०—विचार प्रमाद का घर है अनन्त काल विचार में बिताया विचार वर्गणारूपी और हेय अर्थात् छोड़ने योग्य है।

११—वीतराग दशा का अनुभव ले। पुद्गल मात्र लोक में दौड़ धूप करते हैं।

१२—अब क्या देखना है ? समुद्र जैसे स्वाद बिंदु में क्या देखना है ?

१३—परम सूर्य रहते आगीया के लिये क्यों दौड़ धूप करता है ?

१४—मोहल्ले के कुत्ते मोहल्ले में भौंकते हैं, उसमें क्या देखना है ? स्वभाव यह तो स्वस्वभाव है। विभाव मय कुत्ते भौंकते हैं ?

स्व स्वभाव

दोहा—मुख से कथत ज्ञान का, अंतर छुटे न मोह ।
वे पामर प्राणी करें, मात्र ज्ञानी का द्रोह ।।

श्री रायचंद कवि

१—विषय भोग सर्पवत् अस्पर्शनीय लगें तो आत्म ज्ञान समझ—

२—मुँह से अफीम निकाले बिना शक्कर का स्वाद नहीं आ सक्ता। उसीप्रकार विभाव छोड़े बिना स्वभावानंद नहीं आसक्ता।

३—भवाभिलाषी को विषय, अमृत तुल्य मालूम होते हैं स्वभावानन्दी को विषय, विष के समान लगते हैं।

४—विभाव दशावाले को शाब्दिक ज्ञान रहते भी विषय प्रिय लगता है। आधुनिक तेरी आत्म ज्ञान दशा व्यर्थ है।

५—विषय से रुचि घटती है तो अज्ञान घटता है। जितना

१६—भवी और चरम (अंतिम) पुद्गल परावर्तन करने क तुभम क्या लक्षण हैं ?

१७—हाथी के दो प्रकार के दो दांतों के समान तेरी स्थिति नहीं है क्या ?

१८—वैराग्य भाव अनंत वक्त आया किंतु आत्म भाव बिना अनंत ससार में परिभ्रमण किया ।

१९—तेईस विषय और उनके फल म २४ महान्डक में कितन वक्त परिभ्रमण किया ? विषय म कितने वक्त विष-प्रवृत्ति का अनुभव हुआ ?

२०—मात्र परिणाम ही पत्थर है और प्रवृति यह पारस है।

२१—आत्म रमणता वह ज्ञान चेतना है और पुद्गल रमण यह कर्म चेतना है ?

२२—दो में से एक चेतना आत्मा को समय समय पर लगी रहती है तू किस चतना में है ?

२३—आत्मोपयोग क सिवाय शेष समय सिर्फ अनंत कर्म बधान वाली कर्म चेतना है ।

२४—हर्ष और शोक करना, ये दोनों विभ व दशा के सकेत हैं, निन्दा और प्रशंसा पर समभाव ही स्वस्वभाव है ।

२ —परभाव त्याग, स्वभाव अगीकार कर, सब कार्य स्वस्वभाव स कर, मोक्ष तैयार है ।

२६—पानी के समान शीशे के रंग के अनुसार बदलना छोड़दे विभाव क चरम छोड़ । स्वस्वरूप के पहन ।

२ —गुफा म गया कि अंधेरा, बाहर आया कि प्रकाश अज्ञान की गुफा मे जाना छोड़, ज्ञान महल म रम ।

५३—चौदह राजु का स्नेह त्याग, शिवपथ को भज, शाश्वत को माग, अशाश्वत को दे आग।

५४—पुद्गलानन्द छोड, आत्मानन्द जोड, स्वस्वभाव साध, परभाव फेंक।

५५—पुद्गल में वास तो शिव सुख का नाश, पुद्गल की बात तो आत्मा की घात।

५६—पुद्गल में पूरा ससार म शूरा, ससार में शूरा, स्वस्वरूप मे अधूरा।

५७—स्वस्वरूप में अधूरा उसका ससार में चूरा, पुद्गल गोचर, ज्ञान अगोचर।

५८—विभाव में वास, स्वस्वभाव का नाश, विभाव में राचे वह स्वस्वभाव के कच्चे।

५९—पुद्गल सुहाया, ज्ञान गुमाया।

६०—विचार वैतरणी, कार्य भव निसैनी (निसरणी)।

६१—विचार में मग्न, कार्य से नग्न।

६२—विचार करना है कि कुछ करना है ? पढना है कि सुनना है।

६३—निवृत्ति आत्म प्रवृत्ति है, प्रवृत्ति यह पर—आत्म निवृत्ति है।

ध्यान का साहित्य। ध्यान साहित्य

१—असगीपने का, सिद्ध के सुख का, व भवि का विचार कर।

२—आत्म सुख कहा है ? आत्मा से परमात्मा किस प्रकार होते हैं ? सोच।

४१—स्वस्वभाव मे सिद्धता, विभाव में विकलेन्द्रियता।

४२—अनत पुद्गल परावर्तन से हारा हुआ शाश्वत राज्य मिनटो में ही ले तो तुम्हे मिलता है।

४३—पाच इन्द्रियों का खाज कोढ के रोग के समान है, व्यर्थ का धधा छोड़। राज्यगद्दी का अधिकारी बन,

४४—स्वस्वभाव अमृत होने भी रज के ग्रास की तरह नीरस लगता है। ऐसा क्यों ?

४५—तेरे सिवाय तुमे सममाने वाला अन्य कोई नहीं, तुम्हे स्वय सममना होगा।

४६—अनन्त ज्ञानी तुमसे (ससार से) रोष्ति हो, त्याग कर स्वस्वभाव से, स्वस्थान में सिद्ध हुए।

४७—तेरे बकवाद मात्र मे अनन्त ज्ञानी सिद्ध होगए। सिर्फ तू और तेरा मिथ्या प्रलाप बकवाद रह गया। अब ज्ञानी तेरी छाया तक नहीं पडने देंगे।

४८—चातक सरोवर होते भी तृषित रहता है सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश होते भी घुग्घू को अन्धकार दीखता है, यह किस लिये ?

४९—तुम्हे अनन्त बक्त मार २ कर कर्म फल बताने वाले अनन्त परमधामी भी सिद्ध हो गए, तो भी तू नहीं समझा ?

५०—पतग दीपक के लिये प्राण अर्पण करते हैं तो तुम्हे तेरे स्वस्वभाव के लिये क्या करना चाहिये ?

५१—इन्द्रियाँ ससार में इद्रानीपना भुगतती हैं।

५२—चौदह राज्य लोक के बिखरे हुए स्नेहियों से फिर मिलने की इच्छा है ?

१४—इसी सुमती, समय की भावना, आत्मा का अयोगी अडोल स्वरूप रहते भी राग, द्वेष से कर्म शरीर डोलायमान हो जाता है तथा छ काया की घात का मशीन ले कर जहा तहा दौड़ता फिरता है, धन्य उस अरूपी अवस्था को !

१५—हे सेठजी ! कलम से तुम लिखोगे कि इस दमडी की कलम से तुम खुद लिखाओगे ?

१६—हे सुतार ! कर्म रूप लकडी को तू चीरेगा, कि तू लकडी से चिराया जायगा ?

१७—अरे कुंभकार ! मिट्टी को तू कूटेगा कि मिट्टी तुझे कूटेगी !

१८—हे सोनी, लुहार, तुम घडोगे या घडाओगे ?

मौन

१—मौन, मोक्ष का अनुत्तर मार्ग है। विभाव दशा को त्याग स्वभाव में लाने वाला स्तभ समान है।

२—मौन, स्वभाव में लीन बनने का उपदेश देने वाला सच्चा गुरु है, आत्मा का स्वभाव है।

३—मौन वीतराग पद का अनुभव कराने वाला है, विषय, कषाय को नाश करने वाला मौन है।

४—मौन, विषय कषाय को रोकने का केंद्र स्थान है।

५—मौन समुद्र समान गभीर है, नदी समान सब गुण उस में आ मिलते हैं।

६—मौन, यही भगवान महावीर का मुनिपन था।

७—मौन, आत्म समाधि का गुप्त मत्र है।

३—आत्म द्वारा ही परम ध्यान, प्रभु महावीर ने क्या किया था?

४—तू महावीर का अनुयायी है? महावीर के वचन पर तुझ श्रद्धा है? तुझे महावीर बनना है?

५—वीतराग दशा पर विचार कर, आत्म जागृति कर, शरीर रूप खिलौने के साथ कबतक खेलेगा?

६—पिंजरे में कबतक बद रहेगा? मांस पिंड में कबतक मजा मानेगा?

७—अमीर से फकीर क्यों बनता है? अभी कितने वक्त अमीर से फकीर बनना है?

८—क्या तू इस बगल को, मापड़े को सादि अनत समझता है? जगत में इसमें विशेष आश्चर्य क्या?

९—पुद्गल स्वभाव छोड़े सिवाय स्वस्वभाव का आनन्द नहीं आसक्ता, एक समय दो कार्य नहीं हो सक्ते। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सक्तीं।

१०—हे कुष्टी! अब खुरदना छोड़ दे, देख तो सही कि कोढ का रोग बढ़ता है या घटता है?

११—कुम्हार गधे पर आरूढ़ हो सक्ता है पर यहां तो गधा कुम्हार पर आरूढ़ है।

१२—पुद्गल रूप गधा, आत्मारूप कुभकार को राग, द्वेष रूपी दो दड ले विषय वासना रूपी चौकड़ी में घुमाता है, वाह कुम्हार! तुमसे गधा काम कराता है।

१३—रे कुम्हार! पुद्गल गधे के साथ रहने से तेरी इतनी फजीहत हुई। इस फजीहत से तू नहीं घबराया? क्या विशेष फजीहत के गोले पर चढना चाहता है?

१०—भेदज्ञान ही संयम का सार है। भेदज्ञान ही यथाख्यात चरित्र है।

११—भेद ज्ञान यह लघु केवल दशा है।

१२—श्वासो-श्वास बिना जड़ता, उसी प्रकार भेदज्ञान बिना अज्ञान रूपी जड़ता।

१३—"अणाण भावे माणे विहरड" यह भेद ज्ञान।

१४—भेद भाव बिना अनन्त संसार, भेद भावना से अनन्त सुख।

१५—भेद भावना भव नाशिनी, भेद ज्ञान से, अभेद (केवल) ज्ञान की प्राप्ति।

श्रोता को सम्बोधन

१—पुन्य पाप के स्वरूप को समझो, बकरी निकालते ऊँट न घुसे, कुल घर संसार के कार्य हाथ से करो, नौकर से कराने "हम पाप से बच गए" ऐसा भ्रम निकाल डालो। मुनिराज अपना छोटा तथा बड़ा सब कार्य स्वयं करते हैं। उपयोग रहित नौकर से प्रत्येक कार्य में विशेष अयत्ना होती है।

२—तुम से ज्यादा न बन सके तो सिर्फ रोज १ मिनट प्रवृत्ति मार्ग से घटाते रहो। चार वर्ष में तुम सम्पूर्ण निवृत्त हो जाओगे।

३—पोजीटिव और नेगटीव्ह दो तार के मिलने से विद्युत् उत्पन्न होती है उसी प्रकार साधु और श्रावक का सत्य संघटन समाज में नई जागृति पैदा करता है।

८—वस्तु की कीमत नहीं पर समय की कीमत है । मजदूर लाखों इटें उठाकर जीवन पूर्ण करते है तो भी उनकी ओर कोई आज उठाकर भी नहीं देखता । श्रीकृष्ण ने वृद्ध मजदूर की सहायता के लिए एक इट उठाई थी । वह प्रभु ने समवसरण में वखानी और गणधरों ने शास्त्र म गूथी ।

९—पशु ससारी और कैदी ससारी सच्चे श्रावक या साधु की अपेक्षा परवश रहने के कारण अपनी आत्मा विशेष दमते हैं। पर यह व्यर्थ है पर ज्ञान सहित क्रिया करनेवाला अ त मुहुर्त म केवल ज्ञान के समीप पहुँच सक्ता है ।

१०—मृत्यु के समय मनुष्य मात्र प्राय निग्रथ बनते हैं वे जीवित रहते निग्रथ बन जायँ तो सच्चे ज्ञानी हैं ।

११—ऋषभ प्रभुजी के शरीर को उनके पौत्र श्रेयास कुवार ने इक्षु रस वहेरा कर पोपा था और महावीर प्रभु के शरीर को चदन बालाजी ने उड़द के बाक्ले वहरा कर पोपा था। महावीर स्वामी के लिये उनकी सासु के छांटे हुए नवरत्न का अपेना बाक्ले अधिक कीमती थे ।

१२—महावीर को उनकी सासु ने नवरत्न से वधा जमाई समक्ष ससार की सगाई मान समार वढाया था । पर चदनबाला ने धर्म गुरु समक्ष उड़द के बाकुने वहरा कर ससार का अन किया। विशेप कीमती नवरत्न या उड़द के बाकले ?

चदनबाला की गुण ग्राहकता

१—हे जननी पदमावती ! तू मुझे मास पिंड मे जन्म दे मुक्त हुई, पर मरी माता मूला ने मुझे महावीर परमात्मा के दर्शन

४—साधु, श्रावक साहित्य और क्रिया सब में विकार बढ़ गया है।

५—प्रभु महावीर के काल म (मोजूदगी में) १४००० मुनि ३६००० आर्य्या १५९००० श्रावक और ३१८००० श्राविका थी, पर वर्तमान युग म साधु साध्वी की सख्या पाच हजार की है। अर्थात् महावीर के जमाने से दस गुनी कम सख्या होगई है वर्तमान में श्रावक श्राविका ११ लाख की सख्या में विद्यमान हैं अर्थात् महावीर के काल स दुगुनी सख्या हो गई है। मुनिराजों के जीवन की अपेक्षा श्रावकों के जीवन म अनेक गुना विकार हो गया है हो रहा है जिसका यह एक छोटा सा उदाहरण है।

६—पचम आरे को दुखा और ज्ञानी रहित समझ कर दुखी मत होओ। चौथे और पाचवें आरे में कुछ अतर नही घड़ा बदला है पर घी और उसका प्रभाव वैसा ही है। तीर्थंकर रत्न के घड़े के समान, गणधर स्वर्ण के घडे समान लम्बी धार्ट चादी के घड़े समान, और आधुनिक मुनिराज मिट्टी के घड के समान गिन जाते हैं। पर आतरिक घी और उसके तत्व, शास्त्र परमान तो व ही हैं। महावीर प्रभु ने जो गौतम स्वामी के सुनाये थे व ही शब्द शास्त्र द्वारा तुम सुन सक्ते हो।

७—श्रावक का चारित्र मुनिराज के लिये भी आदर्श रू होना चाहिये। ठाणाग म श्रावका को माता पिता की उपमा द है। उपासक दशाग शास्त्र मे कामदव आदि श्रावकों ने देवताः के जो परिसह सहन किये थे" वे गौतमादि के सामने प्रभु मह वीर न सराहे हैं।

८—वस्तु की कीमत नहीं पर समय की कीमत है। मजदूर लाखों ईटें उठाकर जीवन पूर्ण करते है तो भी उनकी ओर कोई आख उठाकर भी नही देखता। श्रीकृष्ण ने वृद्ध मजदूर की सहायता के लिए एक इट उठाई थी। वह प्रभु ने समवसरण में बखानी और गणधरों ने शास्त्र मे गूथी।

९—पशु ससारी और कैदी ससारी सच्चे श्रावक या साधु की अपेक्षा परवश रहने के कारण अपनी आत्मा विशेष दमते हैं। पर यह व्यर्थ है पर ज्ञान सहित क्रिया करनेवाला अंत मुहुर्त में केवल ज्ञान के समीप पहुँच सक्ता है।

१०—मृत्यु के समय मनुष्य मात्र प्राय निग्रथ बनते हैं वे जीवित रहते निग्रथ बन जायें तो सच्चे ज्ञानी हैं।

११—ऋषभ प्रभुजी के शरीर को उनके पौत्र श्रेयास कुवार ने इक्षु रस वहेरा कर पोषा था और महावीर प्रभु के शरीर को चदन बालाजी ने उडद के बाकले वहरा कर पोषा था। महावीर स्वामी के लिये उनकी सासु के छाटे हुए नवरत्न की अपेक्षा बाकले अधिक कीमती थे।

१२—महावीर को उनकी सासु ने नवरत्न से बधा जमाई समक्ष ससार की सगाई मान ससार बढाया था। पर चदनबाला ने धर्म गुरु समक्ष उड्द के बाकुले वहरा कर ससार का अत किया। विशेष कीमती नवरत्न या उडद के बाकले ?

चदनबाला की गुण आरूकना

१—हे जननी पद्मावती! तू मुझे मास पिंड में जन्म दे मुक्त हुई, पर मे [illegible] ने मुझे महावीर परमात्मा के

करा महावीर जैसी बनाइ और मेरे नाम को अमर बनाया। मुझ जैसी तुच्छ को प्रभु को दान देने लायक और देवताओं से प्रशंसा करने लायक बनाइ, त्रिलोकी नाथ के शरीर को पोषने का महद् कार्य मुझे प्राप्त हुआ। मेरे पापोदय ने मुझे अवधि बताइ। इस लिए भले ही जगत तुझे उपालभ दे, पर हे माता! तेरा किसी भी क्रिया को मैं बुरा नहीं मानता।

२—हे पिता दधिवाहन! तुम मुझे स्थान पन से पोष मुक्त हुए, तो हे सत्य पिता शतानीक! तुम राज्य महल में मुझे जगत न त्यागते, मेरे पिता के साथ युद्ध कर त्रास न देते, मेरी माता को मार कर जंगल में मुझे अनाथ, असहाय अवस्था में न छोड़ते तो मैं त्रिलोकीनाथ को किस प्रकार दान दे सकती।

३—हे माता मूला! तेरा उपकार मुझसे लेश मात्र भी नहीं भूला जाता। तेरा मैं पूर्ण उपकार मानता हूँ। तूने मेरा मस्तक मुंडाया नहीं होता, मुझे तल घर में डाली न होती, मुझे बेड़ी पहिनाइ न होती तो त्रिलोकीनाथ के शरीर को पोषने का—त्रैलोक पोषनका सौभाग्य मुझे कैसे प्राप्त होता? तेरा कितना उपकार मानूं? मेरा आयु तो मिनटों का है पर तेरे गुण ग्राम करने के लिए मुझे अनन्त समय चाहिए।

४—हे मेरी लोह की बेड़ी! तेरा मैं कितना गुण गान करूं तू मेरे लिए अनन्त गुनी कीमती है। रत्न की नेड़िया मुझे अनन्त संसार में भटकाता, पर हे मेरी रत्नमय लोह बेड़ी! तू तो जड़ है तो भी मेरे नेत्रों से मुझे अधिक प्यारी है। पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण बन जाता है। तब हे पारस की [illegible]! तूने मेरे जैसी

मास की पुतली को स्वर्ण, पारस सी ही नहीं बनाई, पर प्रभु दर्शन कराकर प्रभु रूप बना दी।

५—हे मेरे प्यारे सूप ! तुझे तो हृदय में लगा लेती हूँ। तू तो भवदु:ख भञ्जक निधान है। दुनिया तुझ घास का मानती होगी पर मैं तो तुझे रत्न जटित स्वर्ण थाल से भी विशेष कीमती समझती हूँ। अनन्त वक्त रत्न थाल में भोजन कर अनन्त जन्म मरण और अनन्त दुःख बढाये, पर हे सूप रत्न ! चक्रवर्ती के चक्र रत्न चक्रवर्ती को नरक में ले जाते हैं पर तू तो मुझे मोक्ष मार्ग की ओर ले जाने वाला है।

६—मेरे उडद के बाकुले ! तुम्हें उडद के बाकुले कहते मुझे शरम आती है। मैं तो तुझे मुक्ता फल कहूँगी। हंस के भवन में मुक्ता फल खाकर और राज्य कन्या बन मुक्ता हार पहन कर मैंने अनन्त ससार बढ़ाया पर अब तैंने मेरे ससार का अन्त कर दिया है। हे अमृत फलो ! पकवानों ! तुम्हारा मैंने ज्यां २ विशेष परिचय किया वैसे वैसे मेरा ससार बढ़ता ही गया। धन्य, उडद के बाकुले ! तुम्हारे स्पर्श से मैं त्रिलोकीनाथ के दर्शन कर सकी और जिसके फल स्वरूप त्रिलोकीनाथ ने मुझे सिद्ध सिला में अपनी चली बना सम्मान पूर्वक बुला ली।

७—और मेरे आसू ! तुम्हें तो मैं किस प्रकार भूलू ? स्नेहियो के वियोग में आँसू बहाकर अनन्त स्वयभू रमण समुद्र भर दिये जिसके बदले में मुझे अनन्त ससार रो रो कर बिताने पडे तो हे आसू ! तुम्हें मोती के अश्रु कहूँ तो भी थोड़ा है, मोतियों ने तो मुझे अनन्त दुःख दिया। पर हे प्यारे आसू ! तुमने मुझे अजर अमर प्रभु के दर्शन कराकर मुझे अमर बना दी।

आंतरिक आत्मा का आन्दोलन

हे मोक्ष यात्रा के मुसाफिर ! जिस यात्रा के लिये श्री ऋषभ देव स्वामी के शिष्यों को क्रोड़ पूर्व का समय मुसाफिरी में लगा था उसी मुसाफिरी के लिये तुझे मिनट का कोड़वा भाग भी नहीं मिला। दीर्घ समय वालों के लिये श्री ऋषभदेव स्वामी का उपदेश "समय मात्र का प्रमाद न करें" है तो तेरी अल्प आयु के कारण तुझ कितना शीघ्रता चहिये ?

१—जितने प्रमाण में इन्द्रियों की निर्विकारता बढ़ती है उतने ही प्रमाण में तेरी निरंजनता बढ़ता है।

२—जितना अंश पुद्गलानन्द में है उतना ही अंश थोड़ पुद्गल परावर्तन होगा।

३—नर्क के दुःख और देवलोक के सुखों को समान समझ तू तेरे अपनी अमूर्तिपन पर विचार कर।

४—स्वात्म भाव की लीनता सिद्धत्व है।

५—परभाव की रमणता पामरता है।

६—लघु सिद्धत्व का अनुभव करना, होना, यही सम्यक्त्व है।

७—लघु वीतरागता का स्वात्मा में अनुभव होना यही वैराग्य की निशानी है।

८—इन्द्रियों के विषय को "अरि" समान समझ लेना ही लघु अर्हतपन है।

सूर्य के समान—स्वात्मा में अज्ञान, विषय, कषाय रूपी अंधकार का नाश कर प्रकाश फैला और तेरे जीव को देखकर तेरे

दर्शन प्राप्त कर प्रत्येक मनुष्य का अज्ञान अंधकार तेरे मौन रहने पर भी दूर होजाय, वैसा प्रभावशाली बन।

पृथ्वी के समान—सहन शील और आधार भूत जीवों की माता के समान बन।

अग्नि समान—उज्ज्वल कांतिवान बन, तप तेज से अग्नि ज्वाला वत्, एक ही दिशा मे, उच्च दिशा मे सिद्ध शिला की और वहा के निवासी सिद्धों के तर्फ तेरी अहर्निश दृष्टि रख, ऊँचे नेत्र कर उन्हें देख ले और वैसा तू बन जा।

काच के समान—विशेष आदर्श जीवनी बना। मौन रह कर स्वात्म उज्वलता वढा, जिसे निर्मल होने की इच्छा होगी वे लाभ लेंगे।

हाथी के समान—परिसह के समय सहनशील बन तथा अपने पद को याद कर। जोखम उठाने वाला बन।

वृषभ के समान—समय समय स्व लघुता दिखाते, दिन रात दृष्टि नीची रखते, जगत का उपकारी होकर जगत का गुलाम बन, जोखम उठाकर आगे बढ़ता चल।

सिंह के समान—परिसह से निडर बन, आत्म ध्यान के मद में मस्त, अवधूत बन, जीवन प्रवाह को आगे बढ़ाया कर।

सर्प के समान—इर्या के समय तथा एषणा के समय 'बिल प्रवेश' का विचार रख। सर्प त्यागी हुई कांचली की ओर नहीं देखता, वैसे ही संसार के विषय को २३ विषय को विसिर कर उनके प्रतिकूल स्थिति मे विचर। त्यागे हुए विषय की ओर दृष्टि भी मत कर।

पक्षी के समान—अल्प उपाधि और अल्प-स्नेही बन।

वायु के समान—हवा जिस प्रकार ऊँची नीची दिशा न देखते एकसा बहती है वैसे ही तू भी असनेही बन—अप्रतिबंध होकर विचर।

शरीर की अनित्यता।

यह शरीर दीपक की ज्योति के समान कम्पायमान है। सागर में उठते हुए जल तरङ्ग के समान यह शरीर है जिसे तू अपना मानकर बैठा है। तू जिसे नित्य समझ रहा है। कुछ तो सोच। सागरोपम अल्प और पूर्व का आयुष्य अनित्य है तो घटों और मिनटों के आयुष्य वाले शरीर को तू किस प्रकार नित्य समझ सकता है? शरीर की अनित्यता तू स्वयं समझेगा नहीं तो वह जड़ होने पर भी तुझे समझा देगा। शरीर का मोह और उसके द्वारा पैदा होते राग और द्वेष को छोड़ नहीं तो तुझ में ये मैत्री भाव त्याग धक्का दे निकाल देंगे। शरीर की तू "यत्न कर प्रकारण" रक्षा करता है तो भी कई वक्त अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं शरीर बिगड़ जाता है। इसलिए सम्यक् विचार कर।

इस अनित्य मांस के पिंड के बकरे भेड़िये के समान ३॥ क्रोड़ रोम राय हैं और हर एक रोम राय पर पौने दो २ रोग अपना अड्डा जमाये हुए हैं। जब ये उदय में आवेंगे तब तेरी सत्ता और मालिकी कुछ नहीं चलेगी।

अरे! इस शरीर को नित्य समझ कर तुझसे आम्बिल, उपवास आदि कुछ नहीं हो सके और तू कुछ करता भी नहीं।

फूटे हुए घड में से जैसे पानी निकलता है वैसे ही शरीर अनित्यता का काम कर रहा है।

सर्प को विशेष दूध पिलाने से जैसे विशेष विष की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार इस शरीर रूपी सर्प को साता दना असाता रूपी विष की वृद्धि करना है। शरीर पर जितना मोह उतने ही अधिक प्रमाण में दुखानुभव।

एक छिद्र के कारण जो नाव समुद्र उलघन करने में अशक्त रहती है तो इस शरीर रूपी नाव में साढे तीन करोड़ छिद्र हैं वे तुझे किस प्रकार तारेंगे ?

जगत के मनुष्य मोह कर्म की प्रबल सत्ता के कारण अपने शरीर की स्थिति को अनादि अनन्त "अणाइ अप जवसीया" वत मान कर निश्चित बैठे हैं। सन्ध्या का रग आकर्षक होने पर भी थोडे ही क्षण मे लुप्त हो जाता है वैसा ही हाल इस शरीर का है।

शरीर बिलकुल अनित्य है तो भी उसके ऐश आराम के लिये आत्मा अत्यन्त तकलीफ उठाती है। रात, दिन, ठड और गर्मी देखे बिना, दूर जाकर उसके लिए इच्छित वस्तुए प्राप्त करती हैं, पर अन्त में शरीर की राख ही होने वाली है। तो भी उसके लिये कितनी चिन्ता, भय और दुख ।रीर के ल आशय को समझ कर उसे पोषने में अन्य जीवो की घात न हो इसका विचार रख।

शरीर की अशरणता

१—जैसे काच की शीशी फूट जाने पर बिंदु मात्र पानी

नहीं ठहरा सक्ती वैसे ही यह शरीर आत्मा को तीनों काल में भी शरण दाता नहीं हो सक्ता।

२—उत्तमोत्तम पकवान की निष्ठता किसी भी काम में नहीं आती वैसे ही यह औदारिक देह किसी उपयोग मे नहीं आ सक्ता।

३—फुसी तथा मास का बढा हुआ भाग आपरेशन आदि क्रिया म जब नष्ट किया जाता है तब कितनी अधिक शांति मालूम होती है ? तो जिन इन्द्रियों ने फुसियों (पाव)के अनन्त स्वयभू रमण समुद्र तथा मास के मेरु जैसे ढेर इकट्ठे किये हैं उन अशुचि के भंडार पुज इन्द्रिया में वार बार क्या मोहित होता है ? तेरी स्थिति अनन्त काल स पागल सा हो रही है

४—तीना लोक के जड तथा चेत य पदार्थ सचित करें, पर पर मनुष्य क शरीर जैसी दुर्गन्द वाली अन्य कोई वस्तु चीज नहीं। इसके जैसी मलीनता कहा नहीं।

५—ये पाच इन्द्री रूप "भगिन" शरीर को उकरड़ी समझ उसपर विषय वासना के टोकने लोक म से लाच ला २ कर डालती हैं, उकरडी नित्य बढती जाती है और उकरड़ी का मालिक भगी के समान इस अज्ञान आत्मा को उसी म ढुलाकर सर्व प्रसन्न रहता है।

६—भगिन टोकन में विष्टा भरती है उसम कीड़ नाच कूद करते हैं वैस ही इस चमड़ी के टोकन में मास क पिंड के अदर चैतन्य आत्मा कीड़ों से विशप मास पिंड के समान तन्मय बनकर मास को साथ रस कूदाकूद कर रहा है।

७—पांच इंद्रियां काली नागिन के समान हैं। आत्मा रूप मदारी खेल दिखाकर दूध पिलाता है तो भी वे इंद्रियां आत्मा का उपकार नहीं मानती हुई नाश करती रहती हैं।

८—पुद्‌गल जब स्वस्वभाव नहीं त्यागते तब हे चैतन्य! तू चैतन्य होकर विभाव में क्या रमरहा है? तेरा स्वभाव अवर्ण, अगध, अरस और अस्पर्श है तो विभाव हाड़, मांस, खून के गटरखाने में कैदी बनकर क्यों पड़ा है? शरीर तेरा नहीं है।

९—तुझपर कोई अशुची, दुर्गंध वाले पदार्थ फेंक देता है तो तुझे उस डालने वाले पर अत्यंत क्रोध आता है तो यह शरीर कि जो अनंत अशुची की खान हैं फिर उसपर क्रोध क्यों नहीं करता? उससे अलिप्त क्यों नहीं रहता? ।

१०—तू ज्यों २ विशेष स्वादिष्ट पदार्थ इस शरीर को देता है वैसे ही यह विशेष घृणित पदार्थ पैदा करता है। तो ऐसे गुण-चोर, कृतघ्न, शरीर पर इतना तीव्र मोह क्यों रखता है? तुझे दगा देगा तब तू रोवेगा तो जल्दी ही चेत।

११—शरीर को शांति देने वाला आत्मा का द्वेषी है ऐसा ज्ञानियों ने अपने केवल ज्ञान में देख कर फरमाया है। यह सत्य जचे तो इसपर विचार कर। शरीर कितना बेवफा है? श्वान जाति टुकड़ा-रोटी खाकर मालिक की रक्षा करता है पर शरीर कि जिसे तू अपना समझ अच्छे अच्छे खान खिलाता है, रंग बिरंगे वस्त्र पहिनाता है वह तेरा नहीं होता। तेरा और उसका वियोग आगे पीछे होगा ही तो फिर ऐसे अनित्य, नाशवत और बेवफा शरीर की फिक्र छोड़। छोड़ेगा तभी सुखी होगा।

आत्मिक सुख की अप्रियता

१—स्त्री के दाढ़ी, पुरुष के गर्भ रहने और नपुंसक में शूरता का जिस प्रकार अभाव है वैसेही भवाभिनंदी को आत्मिक सुख का अभाव है।

२—रेता का मकान बनाने वाला बालक राज्यमहल देने पर भी अज्ञानता से नहीं लेता वैसेही पुद्गलानंदी आत्मिक सुख नहीं चाहता।

३—वेश्या को सत्ता, गुण, कृपण को उदारता रुचिकर नहीं होती वैसेही भवाभिनंदी को आत्मिक सुख नहीं रुचता।

४—बहिरे के पास गायन, अंधे के सामने नाट्य प्रयोग जिस प्रकार व्यर्थ से मालूम होते हैं वैसे ही विषयानंदी को आत्मिक सुख का प्रतीति नहीं होती।

५—शरीर रूपी जंगल में अज्ञान आत्मारूप हिरण इन्द्रियों रूपी पारधी के विषय कषायरूपी तीर कामठे से घायल हो पड़ रहते हैं। जिसके फलस्वरूप शरीर रूप से संसार मय जंगल में जहां तहां दौड़ धूप करना पड़ता है।

६—बालक के साथ देवलोक के सुखों की बात करना, और भीख मांगने वाले भिक्षुक को चक्रवर्ती राजा के पद दिलाने का कहना, ये वचन दोनों के सामने मिथ्या प्रलाप ही गिने जाते हैं, वैसेही संसार में भ्रमण करने वाला, लालची आत्माओं को आत्म सुख की बातें कहना मिथ्या प्रलाप ही गिना जाता है।

७—मृत देह को चन्द्रोदयादि मात्रा देने से चैतन्य नहीं आ

सकता वैसे ही विषयानन्दी मनुष्यों को आत्मिक सुख की विशालता का ख्याल नहीं आ सकता।

८—जहाँ तक तू भोग विलास को चड कोशिया सर्प के समान विषैले नहीं समझता, और सर्प, काचली त्याग कर भाग जाता है, वैसे ही भोग से डरकर पीछे नहीं हटता, तब तक निश्चय समझ कि अभी पुद्गल परावर्तन करना शेष है।

९—विषय वासना घट जाय तो वहीं चरम पुद्गल परावर्तन समझ लेना चाहिए।

धर्मोपगरण का आंतरिक रहस्य

१—आसन के रस्सी लगी हुई है, उसी प्रकार मेरी आत्मा कर्म समूह से लिपटी हुई है। पर जिस प्रकार आसन से रस्सी अलग खुल सकती है वैसे ही आत्मा से कर्म समूह पुरुषार्थ द्वारा दूर हो सकते हैं।

२—आसन पर की रस्सी दूर होते ही जैसे पूँजणी अलग और आसन अलग हो जाता है वैसे ही कर्म वर्गणा रूपी रस्सी दूर होते ही आत्मा और शरीर स्वाभाविक विभक्त हो जाते हैं और आत्मा को मूल सिद्ध अवस्था प्राप्त हो सकती है।

३—सकुचित किया हुआ आसन विशेष फैल सकता है वैसे ही पुरुषार्थ द्वारा मेरी आत्मा की छुपी हुई अनन्त शक्ति विकसित हो सकती है।

४—आसन बैठने के लिए आधार भूत है। उसी प्रकार जगत् के जीवों का मैं आधार भूत बनूँ। तभी मेरे जन्म की इति श्री है।"

५—आसन बिछाने के पूर्व पुजणी से जमीन को साफ करना पड़ता है, उसी प्रकार सामाइक करने के पहले आत्मा के रहे हुए दुर्गुण–विषय कषाय रूपी कूड़े को दूर करना पड़ता है।

६—मुख वस्त्रिका जितनी स्वच्छ है उससे विशेष स्वच्छ मेरी आत्मा को बनाऊँगा, तभी मेरे जन्म की अपूर्व प्राप्ति समझूँगा।

७—मुख वस्त्रिका का प्रतिलेहन करते समय सूत्र, अर्थ और तत्व ज्ञान का मुझे प्रकाश प्राप्त होओ, ऐसी भावना लानी चाहिए।

८—मुख वस्त्रिका को मँरोरते समय सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, और मिश्र मोहनीय का आत्मा से विभक्त (पृथक्) करने की भावना लानी चाहिए।

९—शरीर में वस्त्र धारण करते क्षमा, विनय, संतोष रूप गुण धारण करने की भावना लानी चाहिए।

१०—पुजणी को छोड़ते राग, द्वेष छोड़ने की भावना लानी चाहिए।

११—पुजणी का बाँधते हिंसा, विषय, कषाय की प्रवृत्ति को ज्ञान रूप डंडा से बाँधने की भावना लानी चाहिए।

१२—बैठते समय जिस प्रकार मैं जमीन पर स्थिर होकर बैठता हूँ उसी प्रकार आत्म धर्म में स्थिर रहने की भावना लानी चाहिए।

१३—'नवकार मंत्र' बोलते समय पंच परमेष्ठी के गुणों की प्राप्ति होने के वास्ते भावना भानी चाहिए।

१४—'तिक्खुत्तो' का पाठ बोलते समय आत्मा के शुद्ध स्वरूप को वंदना करने की भावना लानी चाहिए।

१५—'इरियावही' का पाठ बोलते समय त्रस और स्थावर जीवों की सर्वथा रक्षा करने की भावना लानी चाहिए ।

१६—'तस्सउत्तरी' का पाठ बोलते समय आत्मा को प्रति दिन विशेष शुद्ध करने की भावना लानी चाहिए।

१७—काउस्सग्ग के समय शरीर का भान हटा आत्मलीन होने की भावना लानी चाहिए।

१८—लोगस्स का पाठ बोलते समय चौबीस तीर्थंकरों के गुण याद कर वैसे बनने की भावना लानी चाहिए ।

१९—सामाइक पूर्ण होने पर "धिक्कार है मेरी विषय कषाय मय प्रवृत्ति को कि आत्म धर्म छोड सांसारिक कार्य में प्रवेश करता हूँ।" सदैव मेरा आत्म धर्म में ही जीवन व्यतीत होओ, ऐसी भावना लानी चाहिए ।

बारह व्रत

व्यवहार और निश्चय से

व्रत १ ला—पर जीव को अपना सा समझ सबकी रक्षा करना यह व्यवहार व्रत और जो अपना जीव कर्म वश हो दुख उठाता है उस अपने जीव को कर्म बन्ध से छुडाना और आत्म गुण रक्षा कर गुण वृद्धि करना यह स्वदया है अर्थात् ज्ञान द्वारा मिथ्यात्व हटा आत्मा को निर्मल बनाना यह निश्चय प्राणातिपात विरमण व्रत है ।

व्रत २ रा—झूठ बोलना नहीं यह व्यवहार व्रत और पौद्गलिक वस्तु को अपनी कहना । यह निश्चय मृषावाद है ।।

व्रत ३ रा—दूसरे की वस्तु छिपाव, चोरी करे, ठगवाजी करे और मालिक के दिये बिना लेलवे वह व्यवहार व्रत और पाँच इन्द्रिय की २३ विषय, आठ कर्म समूह इत्यादि पर-वस्तु की इच्छा न कर, ये आत्मा को अग्राह्य हैं सो निश्चय अदत्तादानव्रत।

व्रत ४ था—जो पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष का मर्यादा से त्याग करे तो व्यवहार से और पाँच इन्द्रिय के भोग का सर्वथा त्याग यह निश्चय से मिथुन विरमण व्रत।

व्रत ५ वाँ—धन, धान्य, दास, दासी, चौपद, जमीन और वस्त्राभूषण का मर्यादा म त्याग यह व्यवहार और शब्द, रूप, रस गंध और स्पर्श को मेरे न मानना यह निश्चय से परिग्रह व्रत।

व्रत ६ ठा—छ दिशा क्षेत्र की मर्यादा व्यवहार व्रत और चार गति म भ्रमण करना यह कर्म फल है ऐसा समझ कर उदासीन भाव से रहे यह निश्चय दिशि व्रत।

व्रत ७ वा—एक बार भोगना वह भोग, बारबार भोगना वह भोगोपभोग इसका प्रमाण करना यह व्यवहार व्रत और अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन आत्मा की वस्तुएं हैं उनका भोग उपभोग करना यह निश्चय भोगोपभोग व्रत है।

व्रत ८ वा—विन जरूरी आरंभ आदि करने का आज्ञा देना वा करना यह व्यवहार और मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय योग और प्रमाद की प्रवृत्ति यह निश्चय अनर्था दंड व्रत है।

व्रत ९ वा—मन वचन, और काया के योग निरारंभ म लगावे यह व्यवहार और जीव के ज्ञान दर्शन चारित्र गुण सोच तथा सब आत्माओं के गुण का प्रभुत्व एकसा समान समझ प्रत्येक के साथ

शात भाव या वीतराग भाव से व्यवहार करे यह निश्चय सामायिक व्रत है।

व्रत १०वा—मन वचन और काया के योग एकत्र कर एक स्थान पर बैठ धर्म ध्यान करे यह व्यवहार और श्रुत ज्ञान द्वारा मलीन विचारों का त्याग कर ज्ञानवत जीवो के गुणानुवाद करे, यह निश्चय दिशावगासिक व्रत है।

व्रत ११ वा—आठ पहर तक समता भाव रख सावद्य प्रवृति त्याग निरारभी हो विचरे यह व्यवहार और अपनी आत्मा को ज्ञानादि से पोष कर पुष्ट करे यह, निश्चय पोषध व्रत है।

व्रत १२ वा साधु, मुनिराज, तथा स्वधर्मी आदि सुपात्र जीवात्माओं को अपनी शक्ति मुआफिक दान दे वह व्यवहार और अपनी तथा परकी आत्मा को ज्ञान दान देना, पढना, पढाना यह निश्चय अतिथि व्रत है।

*चौदह नियम निश्चय भाव से

१ सचित—एक सचित ने १२॥ क्रोड भव वाद स्कधक जी से बैर ले शरीर से खाल उतारी थी। धिक् वैरभाव को।

२ द्रव्य—पुदगलानद यह पुद्गल परावर्तन कराने वाला और ससार म भ्रमण करने वाला है।

---

* श्रावक को नितप्रति १४ नियम की मर्यादा करनी चाहिये। अमर्यादित र्जवन से क्या कष्ट होना हैं? यही ऊपर बताये गये हैं। इसको समझ कर हमेशा १४ नियम चितारे मर्यादा करें।

३ विषय —ब्रह्मचारी के लिए विष समान है ।

४ बूट मौजे —नरक म तलवार पर चलाने वाले सुकोमलता सहित दुष्टता के अग है ।

५ मुखवास —आत्मा को रसेन्द्रिया का गुलाम बनाने वाले कर्म के दूत हैं ।

६ वस्त्र —नरक म जाने वाले बादशाहो का लग्नपोषाक है ।

७ गाड़ी घोड़े —गर्दन पर अग्नि रथ रख कर तुम्हे इस प्रकार जुतना होगा ऐसा उपदेश देते हैं ।

८ शयन —अनत उष्णता म सुलानेवाला किम्पाक विष मय शैय्या है ।

९ विलपन —नरक म अत्य त दुर्गंध वाले पदार्थ का विलपन करने वाले ये तेल हैं ।

१० कुसुमसु —फिर से सूघने की इन्द्री प्राप्त न होने देने वाले य दूत हैं ।

११ अब्रह्मचर्य —जहा एक रात भी महान भयकर है उस सातवी नारकी के दर्शन कराने वाले हैं ।

१२ दिशा —जन्म, मरण, करने का यह स्थान है ।

१३ स्नान —यहा ज्यों २ ज्यादे स्नान करेगा वैसे वैसे २ वैतरणि में विशेष स्नान करना पड़ेगा ।

१४भत्तेसु (भोजन)— अग्नि काष्ट और घी से शात नहीं हो सक्ती वैसे ही यह पेट चाहे जैसे और चाहे जितने भोजन स भी शात नहीं हो सक्ता ।

फुटकर विषय

स्वतंत्र विभाग

उत्तम वाक्य,
वेदना के समय का कर्तव्य,
आत्मिक मुद्रालेख (Motto)
चार प्रकार
भव विदारक
जानने योग्य
खुलाभेद

उत्तम वाक्य

१—अल्प आयु, महा पाप, आधे सेर अनाज की आवश्यक्ता और लाखों मन की चिंता साढ़े तीन हाथ जमीन की जरूरत और बड़ महलोंकी फिकर। दस बीस वर्ष की आयु असंख्य वर्षों की गिनती की कल्पना। यह कहां का न्याय ?

२—ससारी जीवों की अज्ञान-लीनता देख सचमुच त्रास पैदा होता है। जो मनुष्य बकरी से डरता है वह केसरी सिंह की घोर गर्जना तथा उसकी मार किस प्रकार सहसक्ता है ? जो आत्मा कीड़ी के डंक से धूजती है वह आत्मा चंड कोशिक जैसे विषैले नाग के डंक को मौन रहकर किस प्रकार सहसकती है ? जो आत्मा साधारण स्नान के लिये गरम पानी से डरता है वह आत्मा पानी से नहीं पर अग्नि रस से उफलती हुई वैतरणी में जबर्दस्ती से किस प्रकार स्नान करने की हिम्मत रक्खेगा ? जो आत्मा जगल जाते बम्बूल के कांटे लगने से बूम मारकर रोती है वह बर्छी भाले, आदि प्राण विदारक शस्त्रों के प्रहार किस प्रकार सहन कर सकेगी ?

३—साधु वा गुरु की भक्ति करना और ससारी का माता पिता की आज्ञा मान धर्म दिपाना चाहिये।

४—श्रावक धर्म पाल अनंत जीव मोक्ष के समीप जा चुके हैं।

५—आत्मा और शरीर भिन्न हैं, आत्मा अजर, अमर अविनाशी है, शरीर सुख, दुख देखता है। आत्मा को न दुख है

न सुख, न मान है न अपमान सिर्फ अनंत काल से दगा देता आरहा है और देता जाता है।

६—संसार के सारे कार्य बुरे हैं और धर्म यही सार पदार्थ है। इस उद्देश को याद रख भरत महाराज आरिसे के भवन में और मरु देवी माताजी हाथी के हौदे पर संसार में ही केवल ज्ञान प्राप्त कर सके थे, तो ऐसे उच्च विचार और निर्मल भावनाएं रखना चाहिये।

७—संसार सुख में लोभ नहीं रखना चाहिये और पशु वृत्तियों के वश में नहीं पडना चाहिये।

८—सुख और दुःख समभाव से सहन करो।

९—संसार की अनित्यतापर हमेशा विचार करो।

१०—पाप का सदैव पश्चात्ताप करो, पश्चात्ताप पाप से छुडाने का साधन है।

११—वर्तमान भूत और भविष्य का विचार करो।

(अ) आधुनिक जीवन कैसा है?

(ब) भूतकाल में कैसा था?

(क) भविष्य में कौनसी गति प्राप्त होगी?

(ड) अभी मृत्यु होजाय तो कौनसी गति प्राप्त हो?

१२—मृत्यु आते भयभ्रांत न होना पडे इसका विचार करो।

१३—एक मिनट भी आर्त, रौद्रध्यान लाना नहीं पडे ऐसे बनो।

१४—मृत्यु के नाम से भय मत लाओ पर हर्ष करो।

१५—वेदनी के पंजे में फँसते रुदन न करो पर हर्ष करो।

१६—चंद्र, सूर्य, जैसे निर्मल बनो।

१७ खून का वस्त्र खून की नदी में धोकर स्वच्छ बनाने वाले कार्य करते रुको।

१८—कोयले को सफेद करने की इच्छा रूप इन्द्री और भोगेच्छा को पूर्ण करने की मिथ्या आशा मत रक्खो।

१९—शत्रु, मित्र, मान, अपमान, सुख, दुःख आदि केवल भ्रम हैं।

२०—कस्तूरी वाले मृग की तरह मदमस्त बनकर परवस्तु के आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा से इधर उधर मत भटको।

२१—आयु अल्प है, आशा अनंत काल में भी पूर्ण नहीं होगी इतनी बड़ी है।

२२—एक-एक आत्मा क्षण-क्षण भर में अनन्त कर्म तोड़ती है, एक एक आत्मा समय समय में अनंत कर्म बांधता है।

२३—निकट भवी, मोक्ष गामी, पुण्य शील पुरुषों को बाल वय या वृद्धावस्था में एकसा मृत्यु का डर, धर्म रुचि और धर्म क्रिया करने की इच्छा जागृत होती है।

२४—विषयेच्छा उसके साधनों की पूर्ति करने से तृप्त नहीं होता, मात्र साधनों का त्याग करने से, उस इच्छा को प्रखर तप, संयम से भस्म करने से ही अपूर्व शांति प्राप्त होगी, अग्नि में घी डालने से अग्नि शांत होती हो तो विषयेच्छा विषय भोग से शांत हो सकती है।

२५—मनुष्य के बाल सफेद हो जाते हैं, दांत गिर पड़ते हैं, शरीर वांक खा जाता है, गुलाबी खून वाला शरीर शुष्क, खोखला होजाता है तोभी जीवन की आशा और विषय की इच्छा नष्ट नहीं हो सकती।

२६—मदिरा पिया हुआ उन्मत्त मनुष्य जिस प्रकार स्त्री को माता और माता को स्त्री कहता है वैसे ही ससारी जीव मोह अज्ञानता म सत्य सुख को दु ख मानते हैं और दुखसागर में डालने वाले को सुख का विधाता समझते हैं, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म कहते हैं।

२७—त्यागने की वस्तु का सचय करते हैं और सचित करने की वस्तु को तिलाजलि देते हैं ऐसे मूर्ख कौन है ? जो ससार के विषयों में लीन हो। अहा ! ससार की विचित्र दशा है।

२८—आधे सेर अन्न और एक टुकडे वस्त्र के लिये मनुष्य चितामणि रत्न हार रहे हैं, भाग्य शाली पुरुष धर्म तत्व पहिचान सक्ते हैं।

१—दु खी को दिलासा देना चाहिये किंतु हिम्मत छोड कर घबड़ाना नहीं चाहिये।

२—एक अच्छी माता सौ मास्टरो का काम करती है। इसलिये अपनी बालिकाओं को व्यवहारिक और धार्मिक शिक्षा देना चाहिये जिससे भविष्य में वे बालिकाए अच्छी माताए बन।

३—विषयासक्त मनुष्य सदा दु खी और निर्बल है।

४—जिसकी तृष्णा विशाल है वह हमेशा दरिद्री है।

५—खराब विचार करना विष पीने के समान है।

६—जिसने मन जीत लिया उसने जगत जीत लिया।

७—जिसने काम जीत लिया वह सब शूरवीरो मे सरदार है।

८—ज्ञान गर्व के लिये नहीं पर स्व और पर के बोध के लिये है।

९—हमेशा अच्छी तरह याद रक्खो कि चर्म-चक्षु बंद हुए बाद अपनी कोई वस्तु नहीं है। इसलिए सब संपत्ति सुकृत में दे दो।

१० क्षमारूपी शीतल जल से क्रोधाग्नि को शांत करो।

११—उदारता रहित द्रव्य चैतन्य रहित देह के समान व्यर्थ है।

१२ दुःखागरत विधवाओं के उष्ण आँसू पोछना और निराधारों का अन्न से पोषण करना, उभय कृत्य उत्तम हैं।

१३—खर्च कम करो अर्थात् पाप घटेगा।

१४—जहाँ भोग है वहाँ रोग का निवास है।

१५—जो तू दुष्कृत्य की ओर जाता हो तो आज ही मृत्यु को याद कर।

वेदनी के समय का कर्तव्य

१—शरीर और आत्मा दोनों भिन्न हैं।

२—देनेवाला लेने आया है साहुकार का कर्तव्य है कि उस का लिया हुआ कर्ज चूकता चुकादे।

३—इस भव में देना नहीं हूँ तो पर भव या कौन से भव एवं कौन से संयोग प्राप्त होने पर दूँगा।

४—ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन आत्मा की वस्तुएँ हैं।

५—प्रभु महावीर के कान में कीलें ठोके, ४९९ शिष्यों को घानी में पील दिये, गज सुखमालजी के सिर पर नरक के अंगारे रक्खे तो ये वेदना किस गिनती में है? अनन्त बक्त सातवीं नरक से पहली नरक तक अनन्त काल के लिए पराधीनता वश अनन्त वेदना सही तो इस हिसाब से यह वेदना बहुत ही कम है।

६—हाड़, मास और खून ये तीन वस्तुए शरीर की हैं। हाड़, माँस और खून की चाह मत रख।

७—वेदनी के समय समभाव रखने स द्रव्य वेदनी का क्षय होता है भाव में अनत जन्म, जरा, मृत्यु की पीडा कमहोती है।

८—मानता है वो दु ख है, न मानता हो तो अनत सुख है।

९—समदृष्टि जीव श्रेणिक आदि नरक मे रहते भी समभाव रम रहे हैं तो तू पाँचवें, छठे और सातवें गुणस्थान का अधिकारी है।

१०—वेदनी का तू कुछ नौकर नहीं है जो उसके दबाने से दब जाय। वेदनी यह तेरे ऊपर का मैल है, जिसे दूर करना तेरा प्रधान कर्त्तव्य है।

११—हाड, माँस और खून आदि बन्धन हैं। खाना है निकालने के लिए, पीना है फेंकने के लिए और पहनना है फाड़ने के लिए, ये जगत के तीन खास सिद्धान्त हैं और इनकी प्राप्ति में मुग्ध बन फँस जाते हैं।

आत्मिक मुद्रा लेख

१—हे आत्मा ! एकान्त मे स्ववस्तु ढूँढ ।

२—हे आत्मा ! तू तेरे स्वत्व में रम ।

३—हे आत्मा ! तू परमात्मा बनेगा।

४—हे आत्मा ! तू अपने, पराये भेद का विचार कर

५—हे आत्मा ! तू कौन है ! कहा से आया और कहाँ जावेगा इसका एकात समय में विचार कर।

६—हे जैन ? राग द्वेष को जीत।

७—हे चिदानद ! रत्न चिंतामणि चख।

४०—मन, वचन और काया के परिणाम समय २ पर शुभ रख और आठों पहर आत्म कार्य करता आगे बढ़।

४१—कार्य, कारण सिवाय असंख्यात् वायु काय के जीवों की हिंसा करता रुक "कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि"

४२—श्री महावीर प्रभु के कान में कील ठोक ने पर भी वे समभाव में स्थित रहे, नमी राजा इन्द्र के नमस्कार करने पर भी समभाव में लीन रहे। हरिकेशी को पिशाच भूत कहने पर वे भी समभाव में लीन रहे। सो तू इन का अनुकरण कर समभाव में लीन बन।

४३—मान पर सुख मानेगा तो अपमान से दुःख प्राप्त होगा। इस लिए मान के समय सोच कि यह मनुष्य जो शब्द कह रहा है, ये शब्द महापुरुषों को शोभास्पद हैं। उनपर तू दुर्लक्ष रख। शब्द पुद्गल हैं। उनके कर्णगोचर होने का और कर्ण-पटु को पौद्गलिक शब्द ग्रहण करने का जातीय स्वभाव है। तेरे धर्म में शब्दों पर ममता भी परिग्रह माना है। इस परिग्रह को त्याग-अनंत वक्त द्रव्य परिग्रह के स्थूल परिचय को त्यागा तोभी इष्ट सिद्धि नहीं हुई, इस लिए भाव परिग्रह का जब बिलकुल त्याग करेगा तभी स्वस्वरूप में प्राप्त होगा और जिस पदको प्राप्त करने की हार्दिक भावसे इच्छा जागृत हुई है, उस पद को आराध सकेगा।

४४—बाह्य, आंतरिक, और परमात्मा इन तीन में से तू कौन है ?

४५—असाता में अरति और साता में रति भाव यह संसारी के संकेत हैं।

४६—परिसह के समय नर्क की वेदना को याद कर।

४७—तुझमें और ससारी मे भावभिन्नता का भेद सोच।

४८—वीतरागी के तुझमें कौन से लक्षण हैं?

४९—सिद्ध समान तूने तेरी आत्मा बनाई है?

५०—श्रावकपना तुझमें कितना है?

५१—शरीर अपना धर्म निभाता है तू तेरा धर्म क्यों भूलता है?

५२—जबतक वीतराग प्रवृत्ति नहा तब तक मोक्ष पद का अधिकारी नहीं।

५३—समय २ पर तू अपने को सिद्ध की तरह समझ।

५४—इष्ट अनिष्ट पर समभाव रखना सीख।

५५—कषाय के समय आत्मा को वश कर, केवल रूप प्राप्त कर।

५६—अनत वक्त पच महाव्रत। पाच सुमति। तीन गुप्ती, देवगुरु धर्म तपश्चर्या से भव का अत क्यों नहीं हो सका? क्या अब होगा? आत्मा की साक्षी से यह प्रश्न सोच।

५७—आत्मा को परमात्मा की याद दिला।

१—तू तेरी दुर्वासनाओं पर अकुश नहीं रख सका तो वे तुझे अपने वश मे कर लेंगी।

२—जो अपने स्वत पर राज्य चलाते हैं और वासनाओं, तृष्णाओं, और भय पर अकुश रखते हैं वे एक बादशाह से भी बड़े हैं।

३—जो अपनी वासनाओं पर अधिकार रखते हैं वे अपने बड़े से बड़े दुश्मन को भी जीतते हैं।

४—जो तुम अपने खुद पर हुक्म चला सक्ते हो तो तुम समस्त दुनिया पर भी हुक्म चला सकोगे।

५—प्राणी ज्यों २ विषय रस का पान करता है त्यों २ उसमें वह विशेष आसक्त बनता है और वह वहांतक बढ़ता जाता है जहां तक कि अंत में वह उसीसे नहीं मरता। इस लिये इससे दूर रहो।

६—दूसरों पर अधिकार चलाना चाहो तो पहिले अपने पर अधिकार चलाओ। तुम्हारे मन पर सत्ता रक्खो। वहीं वह तुम पर सत्ता न जमादे।

७—स्वर्ग का राज्य तुम्हारे स्वयं में प्रस्तुत है।

८—विश्व प्रेम ऐसा प्रकाश है कि जिससे परमात्मा के दर्शन हो सक्ते हैं।

९—गरीबों की सेवा परमेश्वर की सेवा के समान है।

१०—जो तुमने द्रव्य खो दिया तो समझो कि कुछ नहीं खोया, जो तुमने स्वास्थ्य खो दिया तो समझो कि कुछ खोया है और जो तुमने चरित्र खोदिया तो समझो कि सब कुछ खो दिया है।

११—लोभ अपने दिल से हटा तो तू तेरी गर्दन पर पड़ी हुई साकल से मुक्त हो जायगा।

१२—विषय विलास करने के लिये तेरा जन्म नहीं हुआ पर एक महान कार्य के लिये तू यहां आया है।

१३—दुःख अंधकार का नाश करने और सुख साधक मार्ग का प्रकाश करने के लिये महा पुरुष जन्म लेते हैं। सतों का यह कर्म योग है।

१४—धर्म की ग्लानि और समाज की दुर्दशा पर दृष्टि रखो। सब सज्जन इकट्ठे हो उसका उध्दार करने के लिये कमर कसो।

वि० ध० ढढेरो (न्याय विजयजी)

चार प्रकार (चार भेद)

धर्म के चार भेद—दान, शीयल, तप, भावना।

व्रतो के चार भेद—सिंह सिंह, सिंह सियाल, सियाल सिंह, सियाल सियाल।

चार गोले—मक्खन का, लाख का, लोहे का, मिट्टी का।

देवता में से आये हुए जीव के चार लक्षण—

उदारचित्त, सुस्वरकंठ, धर्म का रागी, गुरु भक्त।

तिर्यंच से आये हुए जीव के चार लक्षण—

अविनयी, असंतोषी, कपटी, मूर्ख।

मनुष्य से आये हुए जीव के ४ लक्षण —

विनयी, निर्लोभी, धर्म प्रेमी, सब को प्रिय।

नारकी से आये हुए जीव के ४ लक्षण —

क्रोधी, मूर्ख, दुष्ट स्वभावी, अन्यायी।

देवता ४ कारण से, यहां नहीं आते—

कामभोग में तल्लीन रहने से, नाटक देखन में तल्लीन रहने से, ५०० योजन तक गंध जाने से, नवीन प्रेम जुड़ने से।

देवता ४ कारण से यहां आते हैं—गुरु को नमस्कार करने, तपश्चर्या की महिमा बढ़ाने, तीर्थंकरों के उत्सव करने, वचन बद्ध होने से।

मनुष्य को चार कारणों से धर्म प्राप्त न हो। अहंकार क्रोध, प्रमाद, रोग।

साधु ४ समय शास्त्र न पढ़े —सूर्य उदय होते, सूर्य अस्त होते, मध्यान्ह में, मध्य रात में —यह समय ध्यान का है।

प्रकाश चार जात के हैं —सूर्य का, चन्द्र का, अग्नि का, मणिरत्न का।

अबोध ज्ञान ४ कारण से उत्पन्न होता है —नियमित ज्ञान करने से, सूजता आहार लेने से, विकथा न करने से, अगली तथा पिछली रात को धर्म ध्यान करने से।

४—बाते जीतना कठिन —सब व्रतों में शीयल, इन्द्रियों में रसेंद्री, कर्म में मोहनीय, योग में मन का योग।

४—बातें प्राप्त होना मुश्किल —केवल ज्ञान, शुक्ल ध्यान, शुक्ल लेश्या, भर जवानी में ब्रह्मचर्य —

४—स्थानों पर कषाय का निवास —क्रोध का ललाट में, मान का गर्दन में, माया का हृदय में, लोभ का सब अंग में।

४—प्रकार की चतुराई—जागत रहने से चोर भग जायँ, क्षमा से क्लेश का नाश हो जाय उद्यम से दरिद्रता का नाश हो जाय। और भगवान की वाणी से पाप नष्ट हो जायँ।

४—प्रकार की सञ्ज्ञा—आहार सञ्ज्ञा, भय सञ्ज्ञा, मैथुन सञ्ज्ञा, और परिग्रह सञ्ज्ञा।

४—प्रकार के छन्ने—जमीन का छन्ना इर्या सुमति, वचन का छन्ना भाषा सुमति, मन का छन्ना शुभ विचार पानी का छन्ना मजबूत कपड़ा।

४—प्रकार के मनुष्य दिक्षा के अयोग्य—रोगी, रसेंद्री, लोलुपी, क्रोधी, कपटी।

४—लक्षण देवता के—आख माचे नहीं, छाह पडे नहीं, फूल की माला कुमलावे नहीं, चार अगुल अधर रहे।

४—प्रकार का अजीर्ण—तपश्चर्या का अजीर्ण क्रोध, ज्ञान का अजीर्ण अहकार, काम का अजीर्ण विकथा, भोजन का अजीर्ण कै, वमन, उल्टी या ढीली दस्त।

भव विदारक।

१—हे आत्मा! तू स्वत मे रम। तेरी आत्म ज्योति तुझमे खूब प्रकाशित है, उसे ढूँढ आत्मानद प्राप्त कर।

२—चदन का दावानल कर दरिद्री? शात पै दया न ला।

३ दूसरों की जिम्मेवारी से तुझे अनत भार न उठाना पडे इसलिए सावधान रह।

४—परदया गुलामी है, स्वदया सेठाई है।

५—पुद्गलानद यह पुद्गल परावर्तन है, पुद्गलो का पराजय कर।

६ —क्रोध और कटु को अमृत मानते शर्म रख।

७—मान यह मिष्ट किम्पाक फल है।

८—(अ) क्रोध=-स्कधकजी को ८४ लक्ष जीवयोनि मे परिभ्रमण करना पडा।

(ब)=मान=बाहुबल जी को दीर्घ समय तक छद्मावस्था मे रहना पडा।

(क) माया —मल्लीनाथ जी को स्त्री लिंग प्राप्त हुआ ।

(ख) लाभ —ढंढणजी को साधु दशा में आहार को अंतराय उठाना पड़ा ।

९—स्वनिंदा करना यह सम्यक्त्व का तथा मोक्ष मार्ग का द्वारपाल है ।

१०—स्वनिंदा प्राप्त होने योग्य निधान है ।

११—प्रशंसा यह बंधन रूप चमकीला पत्थर है ।

१२—क्षुधा यह पूर्व में भोगे हुए ३२ रस के पकवान का नशा है ।

१३—शोक यह पूर्व में हँसी किये हुओं की हवेली है ।

१४—तृषा यह पूर्व भोग हुए शरबत का अतृप्त नशा है ।

१५—अरति यह पूर्व भोगे हुए अत्यानंद का अजीर्ण है ।

जानने योग्य ।

देवताओं की जितने वर्ष का आयु हो, उतने ही हजार वर्ष में उनको आहार की इच्छा होती है, और वे उतने आधे महीनों में श्वासोश्वास लेते हैं ।

मेघ कुंवर की माता को वर्षा होने का दोहद उत्पन्न हुआ ।

अभयकुंवर की माता को जीवदया का दोहद उत्पन्न हुआ था ।

कोणिक की माता को पतिका (कोणिक के पिता का) मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ था । यह पूर्वभव की तीव्र रुचि का लक्ष है ।

ज्ञानावरणीय कर्म —आंख के पट्टे के समान है जो ज्ञान नहीं होने देते हैं ।

दर्शनावरणीयकर्म —राजा के सिपाही के समान देखने नहीं देते ।

वदनीयकर्म—अफीम तथा शक्कर से लिपटी हुई तलवार की धार के समान, चाटने से मीठी लगे पर जीभ कट जाय ।

मोहनीयकर्म —मदिरा पिये हुए मनुष्य के समान सत्य धर्म की खबर न पड़ने दे ।

आयुयकर्म —कैदखाने के समान, चार गति में रोक रक्खे।

नामकर्म —चित्रकार के समान, अच्छा, बुरा रूप बनादे ।

गोत्रकर्म —कुभकार के समान ऊँच नीच कुल में उत्पन्न करे।

अतरायकर्म —राजा के भडारी के समान धर्म ध्यान न करने दे ।

वेइन्द्री वाला जीव	४८	मिनट में	८०	वक्त	जन्म	मृत्यु	करता है
तेइन्द्री वाला जीव	४८	,,	६०	,,	,,	,,	,,
चौन्द्री वाला जीव	४८	,,	४०	,,	,,	,,	,,
असज्ञापचेंद्रियका जीव	,,	,,	२८	,,	,,	,,	,,
मिट्टी का जीव मिट्टी मे	,,	,,	१२८२४	,,	,,	,,	,,
पानी का जीव पानी में	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
अग्नि का जीव अग्नि मे	,,	,,	१२८२८	,,	,,	,,	,,
वायु का जीव वायु में	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
हरी का जीव हरी में	,,	,,	३२०००	,,	,,	,,	,,
कदमूलका जीव कदमूल में	,,	,,	६५५३६	,,	,,	,,	,,

मिट्टी का जीव मिट्टी म असख्याते वर्ष तक रहता है ।

पानी का जीव पानी में ,, ,, ,, ,,

अग्नि का जीव अग्नि में ,, ,, ,, ,,

वायु का जीव वायु मे ,, ,, ,, ,,

वनस्पति काय का जीव वनस्पति काय म अनत काल तक रहता है । कीड़ी, मकोड़ का जीव, कीड़ी मकोड़ म सख्यात काल तक रहता है ।

पग के तलुए स जीव निकले तो नरक म जाय
कमर में से जीव निकल तो तिर्यंच म जाय ।
हृडी स ,, ,, ,, मनुष्य म जाय ।
आख म से ,, ,, ,, देवता में जाय ।
सब शरीर में से ,, ,, ,, मोक्ष जाय ।

धम दलाली से श्रीकृष्ण तथा श्रेणिक राजा ने तीर्थंकर गौत्र बाधा था ।

अशरण भावना भान स अनाथी मुनि का नैत्र रोग दूर होगया था ।

शीयल के प्रभाव से सुदर्शन सेठ की शूली सिंहासन होगई थी ।

है नहा—वेश्या (वश्या को इस भव में हैं पर परलोक में सुख प्राप्त नहा होंगे)

है है श्रावक —(इस भव म उदासीन वृत्ति से भोग भोगत हैं वे परभव में भी सुख प्राप्त करत हैं)

नहीं है —साधु, (इस भव म भोग त्यागे हैं पर भव में अतुल सुख प्राप्त होंगे)

नहा नहीं —कसाई—(इस भव म भी सुख नहीं परभव म भी सुख प्राप्त नहीं होगा)

चक्रवर्ती की ऋद्धि —३२००० देश, ९६ क्रोड़ ग्राम,

८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, ८४ लाख घोडे, ९६ क्रोड़ पैदल, १४ रत्न और ९ निधान।

प्रमाद का फल—ससार

चौदह राजलाक —धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल जीवास्तिकाय होने से लोक है।

जाव के ५६३ भेद, १४ नारकी के, ४८ तिर्यच के, ३०३ मनुष्य के, १९८ देवता के।

तीर्थंकर कौन होते हैं ? वैयावच्च करते हैं। (सेवा) वह

पल्य —चार गाऊ (कोस) का लम्बा, चोडा और गहरा कुवा, छोट बालक के सिर के बाल से भी ४०९६ गुना पतला एक २ बाल के असख्य पतले टुकडे करके उस कुए को ठूस २ कर भरदे। उस पर चक्रवर्ती की सेना चली जाय तो एक बाल भी न खसे ऐसा भरे, फिर उस कुए मे से सौ २ वर्ष बाद एक २ बाल निकालें। इस प्रकार निकालते २ सब कुआ खाली होने मे जितना समय लगे उसे पल्य कहते हैं।

सागर—दस क्रोडा क्रोड़ी पल्य का एक सागर।

सूक्ष्म पुदगल परावर्तन —क्रम से जन्म मरण कर लोक पूरा करे,

बादर पुदगल परावर्तन—बिना क्रम से जन्म मरण कर लोक पूर्ण करे,

पुत्र की दहन क्रिया—सम—पाच स्थावर की हिंसा म श्रावक उदासीन भाव रक्खे। वह मनुष्य को कैसे ठगे।

सूर्य —ऊँचा सौ योजन, नीचे अठारह सौ योजन तिर्छा ४७२६३ जोजन तक तपता है।

चार कषाय कहा हैं ? नारकी में क्रोध । मनुष्य में म तिर्यंच में माया, देवता में लोभ विशेष रहता है ।

समदृष्टि जीव को सात बोल का बंध नहीं पड़ सकता भवन पति का, २ वाण व्यंतर का, ३ ज्योतिषी का । ४ नरक ५ तिर्यंच का ६ स्त्री वेद का ७ नपुंसक वेद का देवता एक स में असंख्याते चवते हैं । मनुष्य उत्कृष्ट २९ आंक मे होते हैं इ असंख्य देव समय २ पर पृथ्वी, पानी और वनस्पति में उत्प होते हैं ।

गुप्त भेद ।

१—श्रावक जी हमेशा नीचे लिखे, मनोरथ याद करें ।

१—मैं संसार के आरंभ परिग्रह को कब त्यागूंगा ?

२—संसार रूपी भ्रम जाल तोड़ कर चारित्र अंगीकार क करूँगा ?

३—संथारा कर पंडित मरण कब मरूँगा ?

४—नव वाड सहित शुद्ध शील कब पालूँगा ?

५—छः काय की रक्षा करूँगा वह दिन धन्य होगा ।

६—आगार धर्म छोड़ अणगार धर्म अंगीकार करूँगा व दिन धन्य होगा ।

७—मेरा आत्मा पापमय संसारी जीवन का त्याग क पश्चात धर्म मय साधु जीवन पालेगी वही दिन धन्य होगा ।

२—दान-धन्ना और शालिभद्र अखण्डित ऋद्धि के भोगी हैं देवलोक गए यावत् मोक्ष जायगे ऐसा समझ सुपात्र दान दें ।

३—शायल—सुदर्शन सेठ की शूली फटकर सिंहासन हो गई कलावता के काटे हुए हाथ नव पल्लव सहित हो गए—ऐसा समझ शील पालें।

४—धन्ना अणगार, दृढ़ प्रहारी मुनि, हरी केशी मुनि और ढंढण मुनि तप के प्रभाव से कर्म क्षय कर मोक्ष गए ऐसा समझ तप करें।

५—भावना—प्रसन्नचद्र राजर्षि, एलायची कुमार, कपिल मुनि, खधक मुनि के शिष्य, भरत चक्रवर्ती और मरुदेवी माता भावना के प्रभाव से मोक्ष पद पाये ऐसा समझ भावना भावें।

६—सत्य—अग्नि पानी समान, विष अमृत समान, सर्प फूल की माला समान होते हैं, ऐसा समझ सत्य बोले।

७—धर्म—मैं मृत्यु के दुःख में डूब रहा हूँ, मेरी आयु जल के तरंग समान अस्थिर है ऐसा समझ धर्म करना चाहिए। जैसे लोभी मनुष्य द्रव्य की प्राप्ति में सदैव मशगुल रहता है वैसे ही धर्मी पुरुष भी ज्ञान प्राप्त करने में तत्पर रहे।

८—शास्त्र श्रवण, स्मशान और रोग ये तीन वैराग्य उत्पन्न होने के मुख्य कारण हैं।

९—उदासीनता बिना वैराग्य स्थिर नहीं रह सकता। और वैराग्य बिना आत्मा की सिद्धि नहीं हो सकती।

———

१—देवलोक के देव अपना आयुष्य नजदीक समझ सैकड़ों पत्थर से भी न टूटे ऐसी छाती कूट, रुदन कर शोक मनाते हैं

२—सूत के तागे में मच्छर बंध सकते हैं पर हाथी नहीं

सकते। वैसे ही स्त्री के मोह में कायर पुरुष ही फंस जाते हैं, वीर कदापि नहीं।

बाहुबलजी के ग्राम में प्रभु पधारे तब सुबह दर्शनार्थ जाऊंगा बाहुबलजी ने विचार किया और रात बिताई, पर प्रभु तो सुबह विहार कर गए, जिससे बाहुबलजी को पश्चात्ताप करना पड़ा। इस लिए शुभ और आत्मिक उदय का अवसर प्राप्त होते ही उसका स्वागत करना चाहिये।

४—नंदीषेणजी ने रोज १० पुरुषों को उपदेश चारित्र दिला पश्चात भोजन करने का अभिग्रह धारा था। ऐसे पुरुष भोगी से बदल योगी गिने जाते हैं। बारह वर्ष तक तो ऐसा कार्य क्रम सुचारु रूप से चलता रहा। एक समय नव पुरुषों को समझाये। एक सोनी न समझा था। रसोई होगई थी और वेश्या राह देख थक गई थी उसने नंदीषेणजी को सहज ही कह दिया कि "जब सोनी नहीं समझता तो दसवें आपही ही जाओ" सिर्फ एक वाक्य, सरल, साधारण रीति से कहा हुआ एक वाक्य तुरत नंदीषेणजी चल पड़े।

५—पंच महाव्रत पांच अणुव्रत व्रत के मूल हैं। साधु मुनिराज तथा महापुरुषों का आचार है। सब जीवों से बैर भाव घटाने वाले हैं और संसार समुद्र से तैरने के लिए नाव समान हैं।

६—सब व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत तीर्थंकरों ने श्रेष्ठ कहा है यह नरक, तिर्यंच गति का रोकने वाला स्वर्ग और मोक्ष का बन्ध द्वार खोलने वाला है, चक्रवर्ती और इन्द्र से पूजने योग्य है।

७—कुए का पानी जब तक साफ न हो तब तक घडे में अच्छा पानी नहीं आसक्ता और न आने की आशा ही रहती है। वैसे ही जब तक साधु समुदाय नहीं सुधरेगा तब तक जन समुदाय के सुधरने की आशा तीन काल म भी फलीभूत नहीं हो सक्ती। महावीर को प्रथम अपनी आत्मा व समुदाय का उद्धार करना था, इस लिए १२॥ वर्ष तक मौन रहकर घोर तपश्चर्या की थी। वर्तमान के साधु शारीरिक सघयण की कमी के कारण उतनी शक्ति न हो तो फिकर नहीं, तपश्चर्या न हो सके तो न सही सिर्फ अपने २ भावो म ही जो असाधारण परिवर्तन हुवा है, उसे उच्च कोटि में ले जायँ तो हर एक मनुष्य पर उन मुनि की वैराग्य की गहरी छाप पड़े और वे भाव क्रमश जीवन म घटावें तो साधु समाज और जन समाज का उद्धार हो जाय।

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

——॥ ०१ ॥——

विविध विद्वानों के महत्व

पूर्ण लेखों का समह

प्रकाशक
आत्म जागृति कार्यालय
बगड़ी (मारवाड़)
वाया सोजत रोड

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

प्रस्तावना

प्रथम भाग गुजराती तत्त्व-सग्रह का अनुवाद है। दूसरे भाग म साहित्य समुद्र का मथन कर सशोधन के साथ सग्रह किया गया है। जैन समाज के लिए ऐसे शुभ सग्रह की यह पहिली ही पुस्तक है। इस म 'दान का स्वरूप' कथा विभाग, शिक्षा विभाग, आदर्शजैन, उ काय सिद्धि, श्रीयुत् तत्वज्ञानी भाई वाडीलाल मोतीलाल शाह क वचनामृत, श्रीयुत् वशी, श्रीयुत् पाढी पारसी, मिस्टर जेम्स एलन, श्रीदानस्ठाय, उपवास-चिकित्सा के लिए अमेरिकन डाक्टस का अभिप्राय, वारह व्रतधारी श्रावक के जानने योग्य नियम काड क नियम और अनेक मुनिश्रियों क अल्पारभ, महारभादि की शिक्षा आदि का अति परिश्रम पूर्वक सग्रह किया गया है। विषय एक २ म ग्र का सारभूत है। इस एक पुस्तक का पढने स अनेक ग्र थों और उनके परिश्रम का लाभ मिल सकता है। उपरोक्त सभी कर्त्ताओं का कृतिया के लिए हम उनके आभारी है।

प्रकाशक

आत्मबोध (भाग दूसरा)

अनुक्रमणिका ।

श्रीआत्म-बोध

दूसरा भाग

आदर्श दान।

गंगा नदी जैसे सपाटे से बहने वाले हाथ।
याचक (माँगने वाला) थक जाय, घबरा जाय।
परन्तु विनीत भाव से आमंत्रण करता ही रहूँ।
कुबेर के भण्डार को क्षण भर में खाली कर दूँ।
अन्दर विश्राम जो ठहरा।
हिमालय से तो नए २ झरने बहते ही रहते हैं।
मैं वैसा न करूँ तो
मेरी लक्ष्मी गंगा बास उठेगी।
इधर भ्रष्ट और उधर भी भ्रष्ट हो जाऊँगा।
लोकों के कल्याण के लिए दान नहीं करे।
दान करे अपने स्वार्थ के लिए।

याचक का उपकार माने ।
मैं हूँ आपका सदा का ऋणी ।
वायु के वेग को हँफाने वाले वेगयुक्त पाँवों से
कृपालु फिर ऋण से मुक्त करने के लिए वेग से पधारिए

\+ + + +

शिर पर सत्य का मुकुट ।
ऊपर शील की कलगी ।
ललाट पर पुरुषार्थ का सिन्दूर ।
यह सब धर्म के लिए अर्पित है ।
सब का वह मालिक है ।
खुद उसका सेवक है ।

पग।

स्वार्थ पर चलते दुख पावें, पसीजे ।
परमार्थ पर चलते रीझे ।
स्वार्थ में अपग परमार्थ में महावीर ।

पुणिया श्रावक

बाप दादों की सम्पत्ति वह तो समाज की ।
मुझे तो केवल बारह आने चाहिए ।
उसके लिए भी फिर समाज का ऋणी हूँ ।
प्रभो, इस ऋण से मुक्त कैसे होऊँ ?

अपनी आय से समाज सेवा करूँ ।
नित्य प्रति एक स्वधर्मी को जिमाऊँ ।
गृहलक्ष्मी की अनुमति लेकर उसे सहभागिनी बनाऊँ ।
कृपालु देव, दो पेट पालने ही की सामग्री है ।
सरल तथा सरस एक उपाय है ।
मैं तपश्चर्या करूँ ।
ना, मुझे भी तो लाभ लेने दो ।
अपन दोनों बराबर दान करें ।
नित्य एक बन्धु व बहिन को अन्न विद्या आदि आवश्यक दानदें ।
समाज सेवा करें जो आत्म सेवा है ।
अरण मुक्त होने को ।

अरणक श्रावक

अपने खर्च से जिसकी इच्छा हो उसे ।
समुद्र यात्रा कराता है ।
मध्य समुद्र में जहाज पहुँचता है ।'
आकाश में अचानक गड़गड़ाहट
और बिजली चमकती है ।
जहाज आकाश पाताल को मुँह करता है ।
सब जिन्दगी की आशा छोड़ देते हैं ।
इष्ट देव की आराधना सच्चे हृदय से होती है ।
देववाणी होती है ।
अरणक अपना धर्म छोड़ो तो शान्ति हो ।

प्राणों के जाते भी धर्म की टेक न छोड़ू ।
हृदय में धर्म टेक भले ही रख, जीभ से धर्म त्याग दे ।
धर्म छोड़ने का कहनेवाली जीभ इस देह का दरकार नहीं
जीभ बिना का जीवन श्रेयस्कर है ।
देव परीक्षा करके अपने स्थान को चला जाता है ।

प्रभव चोर

चोरी कहां करना ?
अपार धन वाले धनी के यहां ।
जिससे उसका मन भी न दुखे ।
चोरी किस रीति से करनी ?
नगरवासियों को अपना परिचय देकर ।
निश्चिन्त करके ही ।
धन की गांठ बांधते समय ।
जम्बु कुमार के उपदेश में ।
कर्म की गांठ को तोड़दी ।

माथा सँवारते महाराजा

सारे बाल काले और–
हैं यह एक सुफेद क्या ?
यह तो उपदेशक यमदूत ।
कालापन छोड़ और सफेदी धारण कर ।
संसार असार संयम धार ।

अमृत-वचन

जहा जरूरत हो वहीं टपकते हैं ।
अनमोल मोती गिरते हैं ।
कभी किसी को प्रहार मालूम नहीं पडता ।
सत्य, प्रिय रोचक और पाचक ।
विवेक पूर्वक विचार के स्व पर हितकारी वचन जैनी उच्चारण करे।

गुरु-वाणी

गाय ओगालती है ।
फन के भाग से दूध बनाती है ।
बच्चे से बूढे तक को पिलाती है ।
मा के दुग्ध पान के समान पथ्य बनता है ।
धीरे २ रूपान्तर होकर दही और घी का रूप बने ।
खुद पुष्ट और ससार को पुष्ट बनावे ।

× × ×

जैन की तलवार दुधारी ।
जीतना जाने, साथ में हारने की भी युक्ति जाने ।
मारना जाने, साथ में मार खाने की कला जाने ।
जीतने से भी अधिक तीक्ष्ण बुद्धि जीते जाने में काम में लावे।
जैन तलवार जैसा तेज ।
साथ ही कमल जैसा नरम ।
गिरिराज जैसा बडा ।
साथ ही अणु जैसा सूक्ष्म ।
वज्र जैसा कठिन ।

साथ ही पानी जैसा नरम।
अग्नि जैसा उष्ण साथ ही बर्फ जैसा शीतल।
वायु जैसा स्फुरायमान साथ ही वृक्ष जैसा स्थिर।
सिंह जैसा निडर साथ ही हिरन जैसा डरपोक।
सूर्य जैसा प्रखर और चन्द्र जैसा शान्त।

दो महावीर

भरत-बाहुबल

मेरी आज्ञा मान।
प्रभु आज्ञा के सिवाय सर्वथा सदा स्वतन्त्र।
मैं नरेन्द्र हूँ।
तू नर जड़ पिण्ड पर तो मैं चैतन्य अहमिन्द्र हूँ।
देख मेरे आधिपत्य की सत्ता।
चक्र रत्न बिजली के परे के समान हुवा करता है।
गर्विष्ठ पुतला, देख मेरी मुट्ठी।
अरे यह किस पर ?
हैं, क्या परिणाम होगा ?
अनर्थ।
मुट्ठा पीछी कैसे फिरे ?
क्षमा अमृत से विष का नाश।
मान विष का इस मुट्ठी से नाश करूँ।
लोच किया।
आकाश में देव दुंदुभी! जयनाद!

आदर्श जैन

विश्व के गिरिराज जैसा है ।
तलेटी में शान्ति,
चोटी पर मुक्ति है ।
इच्छा को दमकती तलवार समझता है ।
मोक्ष मार्ग का खेचर है ।
इसके दो पाँखें हैं ज्ञान और क्रिया
उनसे मोक्ष को पहुँच सकता है ।
पाप का फल देखे बिना पुण्य करता है ।
मोक्ष से भी मनुष्य जन्म को मँहगा समझता है ।
जैन के दोनों बाजू प्रकाश है ।
विषयी के आगे और पीछे दोनो ओर अधकार है ।
ज्ञान को मोक्ष की कुञ्जी या स्क्रू समझे ।
दूसरे ईंट का जवाब पत्थर से देते हैं ।
जैन सत्कार सन्मान से जवाब देता है ।

दु खादि को दुश्मन नहीं परन्तु अनुभव सिखाने वाले उपकारी गुरु समझता है ।

समुद्र की भयकर लहरें जैन गिरिराज को तोड़ नहीं सकतीं ।
वासना में शान्ति का अभाव समझता है ।

अक्षरों की वर्णमाला के सदृश गुण का विकास करता है ।

दूसरा को जीतन वाला नहीं परन्तु अपने को जीतने वाला वह जैन।

जैन का शत्रु जन्मा नहीं और अनन्त काल तक जन्मने का नहीं आज जैन परस्पर लड़ते हैं यह जैन रूप नहीं है।

जैन को देव बनना सुलभ,

परन्तु देव को जैन बनना दुर्लभ।

जैन प्रत्येक वस्तु के चार भाग करता है —

बीज, वृक्ष, पुष्प, फल। मनुष्य, हृदय, विचार, आचरण।

बाह्य अवस्था को अन्तर अवस्था की छाया समझता है।

जैन के लिए भला करते बुरा काम करना अपना नाम भूलने जैसा असम्भव है।

पढ़े लिखे से जैसे अशुद्ध 'क', 'ख' लिख जाने मुश्किल हैं।

वैसे ही जैन के लिए खोटा कार्य अशक्य।

चोर के लिए चोरी सरल।

साहूकार के लिए महाकष्ट दायी।

जंगली पत्थर की मूर्ति बने तो प्रकृति को पलटते क्या देर?

कषाय अन्धकार है और वह उल्लू जैसे अधम को प्रिय है।

कषाय की चिनगारी को ज्वालामुखी से भयंकर समझ।

जैनी कषाय को वश करता है।

इतर जगत् उसके वश होता है।

नारकी में जाने वाला ही धन को जमीन में गाड़ता है।

जैन अपनी सम्पदा आकाश में उड़ा देता है।

बड़े से बड़ा रोग कषाय को मानता है।

स्व प्रशंसा को निरी मूर्खता समझता है।

दुनियाँ दूसरों को जीतने को तड़फती है।
जैन सर्वोपरि अपने को जीतता है।
अपने को जीतने से जगत् जीता जाता है।
अपने को सुधारने से जगत् सुधरता है।
ज्वलत पापों को क्षण में भस्म करता है।
शुभ भावना का पाँख सदा फड़कती ही रहती हैं।
बिना त्याग की भावना वाला बड़े से बड़ा गुलाम है।
विचार के अनुसार ही बर्ताव रखता है।
सुख दु ख का मूल अपने ही को समझता है।
सूक्ष्म बीज मे से वड़ के वृक्ष जैसी श्रद्धा।
जमीन में से सोंठे के रस की आशा रखता है।
मार से छोटा बालक भी ना वश नहीं होता,
प्रेम से केसरी सिंह को वश मे करता है।
धन को स्वर्ग में ढेर करें जहाँ कीड़ों और उदई का लेश न हो। (यह उत्कृष्ट दान से होता है)
कीचड़ से कनक को कनिष्ट समझ।
तुच्छाधिकार वही नरेश पद।
मोह को मृत्यु शय्या समझे।

(श्रीयुत वसी कृत)

वीरों के खून से बना हुआ यह शरीर है।
शत्रु के बाणो को लज्जित करने वाला उसका अद्भुत हृदय है।

आध्यात्मिक जीवन का यह समुद्र है।
मुख के ऊपर चन्द्र की गहरी शीतलता है।
सूर्य जैसा तेजस्वी जगमगाहट हो।
आंखों में वीरता का पानी भलक रहा हो।
जीवन पर ब्रह्मचर्य का निशान फहरा रहा हो।
चेहरे में अमृत भरा हो।
जिसको पा-पा कर जगत् विशद श्वासा लेवे।
मैत्री, प्रमोद, करुणा, और माध्यस्थ भावना की रेखा ओठो पर लहरें लेती हों।
सुशीलता के भार से भवें नम रही हों।
जीभ की मीठास से पत्थर भी पिघल जाय।
जैन के जीवन में अडिग धैर्य और अखण्ड शान्ति हो।
स्नेहमय नेत्रों में से विश्वप्रेम की नदी बहे।
जैन बोले थोड़ा किन्तु बहुत मीठा।
जैसे मुँह में से अमृत गिरा रहा हो।
श्रोता वचनामृत का प्यासा बना ही रहे।
मधुर वचन से सब वश होवे।
जैन गहरा ऊँडा है, कभी छलकता नहीं है।
जैन के पैर गिरे वहां कल्याण छा जाय।
शब्द गिरे वहां शान्ति छा जाय।
जैन के सहवास से अजीब शांति मिलती है।
जैन प्रेम करता है, मोह को समझता ही नहीं है।
जैन के दम्पति धर्म में विलास की गंध नहीं है।
जैन सदा जागृत है।

कष्टों की हास्य करे वह जैन।

विजय म खुश नहीं।

पराजय में शोक नहीं।

जैन यौवन को सयम स वशीभूत करता है।

सत्ता में सयानापन रखता है।

धन का आदर्श व्यय करता है।

ज्ञान के चक्षु से जगत् को ज्ञानी बनाता है।

युद्ध को कटा करके भी दया की ध्वजा फहराता है।

दुश्मन को प्रेम स भेंटकर जैनत्त्व की दिव्यता और उदारता का दर्शन कराता है।

जगत् की उकरड़ी के बीच अपना बगीचा बनाता है।

जैन हृदय से समझता है कि बन्ध और मोक्ष का सृष्टा मैं ही हूँ।

स्वर्ग का कोई भी देव मेरी सहाय करने म समर्थ नहीं है।

दृढता और शान्ति ये दो युद्ध के पवित्र शस्त्र हैं।

विनय और शौर्य दो प्रचड भुज।

जड़ता और निर्बलता उसकी कल्पना में नहीं है।

कुचित दृष्टि और वहम उसके राज्य में नहीं है

लोक-कीर्ति के भूत को पैर से कुचलता है।

दुनिया की वाह-वाह उसके लिये बकवाद है।

सत्य और धर्म के लिये सर्वस्व को त्याग करता है।

मृत्यु से भी महान् दुःखों को हजम करना यह सीख रहा है।

दुष्ट भावना वाले को भी यह अच्छा बनाता है।

सत [illegible] कहे और जैन वे धड़क 'हा' कहता है

जैन ससारी होते हुए भी असंसारी सरीखा रह सकता है।
गुस्से को आग को नम्रभाव हास्य के जल में शान्त करता है।
दूसरे के दोष भूल कर खुद के दोष ढूंढता है।
जैन की गरीबी में सताप की छाया है।
उसकी श्रीमताई में गरीबी के हिस्से हैं।
सात्त्विकता की चांदनी में जैन अहर्निश स्नान करता है।
चमकीली चीजें जैन मुफ्त में भी नहीं लेता।
आत्म-सन्मान में मस्त रह कर मिथ्याभिमान का भस्म करता है।
जैन को देख कर दूसरों को वैसा बनने की इच्छा जागृत होती है।

श्री० वा० मो० शाह के वचनामृत

१—स्वधर्मी-वत्सल-वत्स अर्थात् पुत्र सरीखा प्रेम धर्म बन्धुओं से रखना और उनकी वैसी चिन्ता करना।

२—श्रीमंत मूजी से दरिद्री श्रेष्ठ है।

३—कंजूस जोड़ और गुणाकार सीखता है, बाकी और भागाकार नहीं सीखता है।

४—कंजूस ने साधु जी से याचना की, महाराज आप हमको रोज प्रतिज्ञा देते हैं, आप भी आज दान देने का उपदेश न देने की प्रतिज्ञा कीजियेगा।

५—महमद गजनी मृत्यु के समय धन के ढेर पर सोकर बालक की तरह खूब रोया था, हाय, मेरे साथ इस में से कुछ नहीं चलता। (अन्याय न करता तो रोना न पड़ता)

६—धन को खोदने का कुन्हाड़ा दान है।

७—दानी वही है जो सरोवर की माफक रात्रि दिन किसी का इंकार नहीं करता।

८—तीर्थकर भी मोक्ष जाने के पहिले ३८८८० लाख सोनैया का दान देते हैं और जगत को दान देना सिखाजाते हैं।

९—दरिया का पानी और कुजूस का धन दोनों बराबर है।

१०—सत्य और प्रेम का उपदेश देकर गुनाहों को रोकने वाला पोलीस वही साधु।

११—लोह की साकल को तोड़ना सहज है किन्तु तृष्णा का तोड़ना मुश्किल है।

१२—हीरा, मोती, मानक, रूप पत्थर को कीमती समझते हो परन्तु धर्म को नहीं।

१३—नागिन को वश करना सहज है किन्तु ममता को वश करना मुश्किल है।

१४—लाखों शत्रु मित्र बन सकते हैं किन्तु एक बुरा काम मित्र नहीं बन सकता है।

१५—रूठे हुए लाखों को समझाना सहज है किन्तु रूठे हुए हम को समझाना दुष्कर है।

१६—तलवार और बन्दूक के घाव से वचन का घाव तेज है।

१७—दुश्मन से दाव पेच करते हो वैसा मोह से करो।

१८—७२ कला और १८०० भाषा का ज्ञान सरल है किन्तु एक आत्मा का ज्ञान होना मुश्किल है।

१९—दमका बुगलों का, दया का, बाज का, हरामी का, टीलों

क्म और सप का उपदेश कायरन का वैसे सम्प्रदाय, शिष्य और क्षेत्र का मोह छुटे विना मुनि का उपदेश निस्सार है।

२०—मछली की घात पारधी स नहीं मछलियाँ ज्यादा करती हैं। वैसे अन्य धर्मी से कलह प्रेमी साधु, और श्रावक जैन धर्म का ज्यादा नाश करते हैं।

२१—इस भव मे भूतकाल की खेती को लाट रहे हो और वर्तमान में भविष्य क लिये बीज बो रहे हो।

२२—नाटककार राजमुगट पहिनन से राज्य लक्ष्मी का अधिकारी नहीं हैं। वैसे मुनिपने का नाम धरने वाले कल्याण के भागी नहीं हैं।

२३—ईसाईयों न भारत म धर्म प्रचार क लिये—१३७—मुक्ति फौज नाम का संस्थाएँ, १८७७८—पादरी धर्मगुरु, १५००डॉक्टर्स, ४०० सफाखाने, ८३ छापाखानें, ९९ अखबार, ५० कोलेजें ६१० स्कुलें, १७९ उद्योगशालाएँ, ८८०४४ विद्यार्थी ६१ अध्यापक विद्यालय, श्रीमत जैनियों, आपने आपके धर्म प्रचार क लिए क्या कुछ किया है ?

२४—जैसे हिन्दू और मुसलमीनों न आपस मे लड़कर स्वराज्य गुमाया वैसे श्वेताम्बर दिगम्बरो ने मूर्ति क लिए, और स्था० साधुओं न सम्प्रदाय के लिये आज जैन धर्म को मुड़दल सा बना रक्खा है।

२५—जैसे कचहरी, कानून, और वकील की स्थापना शांति क लिए है, आज उतनी ही ज्यादा अशान्ति और क्लश वे फैला रहे हैं वैसे, सम्प्रदाय, कल्प, मर्यादा, और आचार्यादि क्लेश के ... बन रहे हैं।

६—छोटे मनुष्य विकाश के लिये निम्न भूत है वैसे ही सम्प्रदाय धर्म प्रेम में विघ्न भूत।

२७—वर्तमान राज्य और धर्म सगठन का शिर नीचे और पैर ऊँचे है। कल्प और मर्यादा जैसे मामूली विषय के ऊपर विशेष लक्ष देते हैं। समकित और वात्सल्य भाव तथा व्रतादि के लिये कुछ परवा भी नहीं करते हैं और दूषण को भूषण रूप समझ रहे हैं।

८—तामसी धर्म जनून सिखाता है, तब सात्विक धर्म गम खाना सिखाता है और जैन धर्म के आचार्यो ने भी जनून सिखाना शुरु किया है इसीसे धर्म के झगड़े हो रहे हैं।

२९—दरियाई पानी उन्नति के शिखर पर चढने वाला होता है, तब वराल रूप से भस्म होकर बादल रूप देह धारी बन कर मुसलधार बरसता है वैसे पुराने रीतिरिवाज नाश होकर नये जन्म धारण करते हैं। शिथिलाचारी यतियों के बाद लोंकाशाह का जन्म हुआ। अब नये वीर की अत्यन्त आवश्यकता है।

३०— कष्ट देनेवाले को कष्ट देकर खुश होने का यह जड़ जमाना है तब पूर्व में क्षमा देकर खुश होने का जमाना था।

३१—कष्ट देने वाले को कष्ट देने से अपने कष्ट में कमी होती नहीं है, परन्तु सदा दुःखों की वृद्धि होती है।

३२—वैर लेने से नुकसान सिर्फ दो मनुष्यों को नहीं होता किन्तु समस्त जगत् को नुक्सान होता है। यह समझ आज के जमाने में प्राय असभव सी है।

३३—धर्म मरजियात है। न कि फरजियात। गुरुभक्ति मरजियात नकि फरजियात।

३४—स्वामी श्रद्धानन्दजी की प्रतिज्ञा गुरुकुल की स्थापना न होय वहा तक घर में पैर न रखना। है कोई जैन वीर ?

३५—दूसरे के दोष देखना यह खुद के दोष द्वार खुल करने के समान है।

३६—बुद्धि यह चौधार खड्ग है।

श्रीयुत अमृतलाल पाढीयार कृत

१—मन को हड़कवा, शरीर को क्षय, बुद्धि को कोलेरा, गरदन को प्लेग की गाठ होय और पैर में लकवे की बीमारी आज के श्रीमतों को लगी है।

२—एक रोटी का टुकडा खाने वाला भी जगत मात्र का ऋणी है।

३—लीलोती के त्याग करने वाले ने क्या अनीति, असत्य, और कूड़ कपट के त्याग किये हैं ?

४—अष्टमी चर्तुदशी के उपवास करने वाले ने क्या बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, बेजोड़ विवाह, कन्याविक्रय, वर विक्रय और नुगते में जीमने का त्याग किया है ?

५५—संवत्सरी से क्षमा के साथ क्या संतोष की याचना की है ?

५६—प्रभुस्तुति करनेवाला ने क्या विकथा निन्दा का त्याग किया है ?

अल्प आरम्भ व महा आरम्भ

१—हाथ में अग्नि लेने वाले को कौनसा कर्म ? और हीरा [illegible] को कौनसा कर्म ?

२—वेदनीय कर्म बड़ा व मोहनीय कर्म ?

३—वेदनीय कर्म के क्षय के लिये कोशिश करते हो या [illegible]हनीय के लिए ?

४—वेदनीय से डरते हो उतने क्या मोहनीय से डरते हो ?

५—रेशम पहनने वाला दुःखी या जलता वस्त्र पहने वाला ?

६—कांटे पर सोने वाला दुःखी या रेशम की गद्दी पर सोने [illegible] दुःखी ?

७—स्त्री से मोह करने वाला दुःखी या अग्नि में [illegible] वाला ?

८—मोती का हार पहनने वाला पापी या फूल का हार ?

९—मोती कैसे बनते हैं और फूल कैसे बनते हैं ?

१०—फूल सूंघने वाला पापी या तम्बाकू सूंघने वाला ?

११—अपने हाथ से खेती करके रूई निपजा के कपड़े तैयार [illegible]ने वाला पापी या चर्बी के कपड़े वाला ?

१२—हजार कोस बैल गाड़ी से यात्रा करने में अधिक पाप [illegible] एक मील भर मोटर या रेल से यात्रा करने में ?

१३—घर के सैंकड़ों दीपक जलाने वाला पापी या एक [illegible]जली का दीपक जलाने वाला ?

१४—तीन सौ साठ दिन यत्नापूर्वक रसोई बनाने में अधिक पाप या एक दिन अज्ञानी नौकर नौकरनी से ?

१५—हजारों वनस्पतियों से बनी हुई औषधि में अधिक पाप या शराब, अण्डे, चरबी, वाली एक बूंद या गोली में ?

१६—फलाहार में ज्यादा पाप या मिठाई में ?

१७—लिलोती में ज्यादा पाप या कस्तूरी में ?

१८—पुष्प में ज्यादा पाप या इत्र में ?

१९—लाख मन गेंहू के आटे में ज्यादा पाप या परदेशी पाव भर मैदे में ?

२०—तिल्ली के तेल में ज्यादा पाप या मिट्टी के तेल में ?

२१—हाथ के बुने हुवे सैकड़ों थान में ज्यादा पाप या चरबी वाले एक तार में ?

२२—सूत के लाख चवर में ज्यादा पाप या चवरीं गाय के एक चवर में ज्यादा पाप ?

२३—सौ मन गुड़ का ज्यादा पाप या पाव भर परदेशी शक्कर में ?

२४—घर पर हजारों मन पिसाने में ज्यादा पाप या मील की चक्की (Flour mills) में एक कण पिसाने में ?

२५—घर में कुँआ रखने में ज्यादा पाप या एक नल रखने में ?

२६—हजारों बार गोबर से लिपन करने में ज्यादा पाप या एक बार फर्श जड़ाने में ?

२७—गौ पालन करके नित्य दूध पीने में ज्यादा पाप या सारी जिन्दगी में एक दफा एक चाय का प्याला पीने में ?

२८—मण भर पानी पीने में ज्यादा पाप, या सोडावाटर की एक शीशी पीने में ?

२९—सैकड़ा गायें पालने मे ज्यादा पाप या एक बार बाजारू दूध घी खाने में ?

३०—मण भर मिठाई यतनापूर्वक बनाने में ज्यादा पाप या सेर भर मोल लाने मे ?

३१—न्याय उपार्जित लाखों की सम्पत्ति मे ज्यादा पाप या अन्याय उपार्जित एक कौड़ी मे ?

३२—लाखों नारियल की चूड़िया पहिनने वाली को अधिक पाप या एक हाथी दांत की चूड़ी पहिनने में ?

३३—घर पर रसोई बनाकर जीमने वाला पापी या लुक्ते में जीमन वाला ?

३४—सौ विवाह मे घी जीमने वाला पापी या एक मोकाण मे घी खाने वाला ?

३५—कसाई को गौ बेचकर रुपये लेने वाला पापी या बेटी को बेचकर रुपये लेने वाला ?

३६—सौ बेटी को न पढ़ाने वाला मूर्ख या एक बेटे को ?

३७—भयकर बीमारी मे सतान की रक्षा नहीं करने वाला शत्रु या सन्तान को विद्या नहीं देने वाला ?

३८—बेटी को लाख रुपये की बकशिस देनेवाला उत्तम कि शिक्षा देनेवाला उत्तम ?

३९—अछूत का अन्न खाने वाला अपराधी कि वृद्धलग्न या कन्याविक्रय लग्न में जीमने वाला ?

४०—सतान के अगोंपाग काटने वाला पापी कि बाललग्न करने वाला ?

४१—पुत्र को कर्जदार बनाने वाला पापी कि अज्ञानी रखने वाला ?

४२—संतान को विलासी व विषयी बनाने वाले उसे मीठा जहर देते हैं।

४३—धर्म रक्षा के हेतु धर्म कलह करनेवाले धर्म वृक्ष का जड़ काटने वाले हैं। (आज ऐसे दोषी बहुत हैं कारण विज्ञान कम है)

४४—सब दुःख और पापों का मूल कारण अज्ञान है ?

४५—सूर्योदय से सब अंधकार दूर होता है इसी प्रकार सत्यज्ञान से सब दोष और दुःख दूर होकर सकल सुखों की प्राप्ति होती है।

उपसंहार

पाप से जीव मात्र डरते हैं, कारण पाप का फल दुःख है। जैनशास्त्र में पाप दूसरा नाम है आरम्भ। अल्पारम्भ अर्थात् थोड़ा पाप और और महारम्भ अर्थात् बहुत पाप। अल्प पाप और महापाप की व्याख्या ठीक न समझने से आज अनेक गृहस्थ व त्यागी लाभ की जगह हानियां उठा रहे हैं जैसे बिना परीक्षा सीसे जवाहिर खरीदनेवाला ठगा जाता है।

शास्त्र वचनों को समझने के लिए सद्गुरु की बड़ी भारी जरूरत बतलाई गई है। आज इसका पालन थोड़ा होने से पाप के निर्णय में अन्धकार आ गया है। जैन जनता प्रत्यक्ष पाप अथवा स्वहस्त पाप को बुरा मानती है, परन्तु परोक्ष पाप को प्रायः भूल रही है। जैसे अल्पज्ञ जीव लगन वाली लकड़ी व

पत्थर को दु:ख का कारण मानता है, कि जब विवेकी मनुष्य उसके असली कारणों को ढूंढता है और उससे बचता है।

जैनों का ध्येय जीवदया होते हुए भी हिन्सा वढ रही है, जो ज़रा विवेक दृष्टि लगाकर विचार करेंगे तो अनेक दोष स्पष्ट मालूम पड़ जायगे। शास्त्रकारों ने हिन्सा के २७ प्रकार कहे हैं। मन, वचन, काया से पाप करना, कराना व अनुमोदन करना, भूत, वर्तमान और भविष्य काल इन २७ प्रकारों से हिन्सा का पूर्ण त्याग वह अहिन्सा है।

देखो! श्री उपासक दसाग सूत्र में सब श्रावकों ने केवल सूत के दो वस्त्र रक्खे हैं। घर का घी और केवल एक जाति की घर में बनी हुई मिठाई रक्खी है। नाम खोल कर जीवन भर के लिए केवल दो चार शाक रक्खे हैं। अब मुनियों को देखो, सब छोटे बड़े काम निज हाथों से ही करने की आज्ञा है किसी से कराने की मनाई क्यों है? कारण हाथों से, विवेक से अल्प पाप होता है व स्वावलम्बीपन रहता है। आज मशीनें और उतावलिए अविवेकी नौकरों से काम लेने में हजारों गुना पाप वढ रहा है।

मोल की चीज लेकर जो दाम देते हो उसे उसके धन्धेवालों के हाथ पाप करने में मजबूत होते हैं। एक महापुरुष का कथन है कि "एक हड्डीका बटन लेने वाला हजारों गौवों को काटने वाले कसाइयों के हाथ मजबूत करता है।" इससे यह बात सिद्ध होती है कि अल्पपाप व महापाप का निर्णय विवेक दृष्टि से करना चाहिए। अज्ञान से दु:खवर्धक निमित्तों को भी आशीर्वाद रूप सुखदायी अपन मान बैठते हैं। इसलिए यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीवन की आवश्यकताएं घटाओ। इन्द्रियों को

२०—व्यभिचार का आरोप रखने वाले को सात साल का सख्त कैदकी सजा कानून-धा० २०६।

झूठ के अपराधों की सजाऐं

१—खोटा सौग द खाने वाले को, छ मास की सख्त कैद की सजा और १०००) (हजार) रुपया दड़का कानून धा० १७८।

२—किये काम के लिये दस्तखत न करने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा और ५००) रुपये दड़ का कानून धा० १८०।

३—खोटा बात प्रतिज्ञा पूवक करने वाले को तीन साल का सख्त कैद की सजा कानून धा० १८१।

४—झूठा कलक देने वाले को—छ मासकी सख्त कैदकी सजा और १०००) रुपये दण्ड का कानून न० १८२।

५—खोटी गवाही भरने वाले को-सात साल की सख्त कैद की सजा कानून का० १९३।

६—झूठी खून की गवाही भरने वाले को फासी की सजा—कानून धा० १९४।

७—दूसरे का रक्षा के लिये झूठी गवाही भरने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २०१।

८—बनावटी अगुठा या सही करने वाले को सात साल का सख्त कैद की सजा कानून न० ४७५।

९—झूठा नामा व हिसाब करने वाले को तथा उसको मदद करने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४७७।

१०—झूठे सत दस्तावेज, रजिस्टर आदि के लिखने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा—कानून धा० १९५।

चोरी के अपराधों की सजा

१—अच्छा माल बता कर बुरा माल देने वाले को–सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० न० ४२०।

२—चोरी का माल लेने वाले को—छ मास की सख्त कैद की सजा और १०००) रुपैये दड का कानून धा० १८८।

३—ताजा आटा, दाल आदि में पुराना माल मिलाने वाले को छ मासकी सख्त कैद की सजा और १०००) रुपये दड़ का कानून—धा न०—२७२।

४—पानी पीने के स्थान मे कपड़े धोने मे तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून धा० २७७।

५—किसी का कुत्ता चोरने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा न० ३७९।

६—सेठ की चोरी करने वाले नौकर को सात साल की सख्त कैद की सजा–कानून धा० ३८९।

७—दूसरे का भूला हुआ माल खर्च करने वाले को। दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०३।

८—मिली हुई वस्तु उस के मूल मालिक को न देने से व मालिक को न ढूढने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०३।

९–विश्वास घात करने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०९।

७—नाम उतरा कर पाछे स आग लगाने वाले को दो साल की सरत कैद की सजा, कानून धा० ४२५ ।

७—वनावटी नोट बनाने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४८९ ।

९—सिपाइ का खोटा ड्रेस पहिरा ने वाले को तीन मास को सरत कैद की सजा कानून धा० १४० ।

१०—जुआरी को मकान किराये देने वालों को दो सो रुपैंवे दण्ड कानून धा० २९० ।

गैर वर्त्ताव के अपराध की सजा ।

१—धर्म स्थान म बीभित्स काय करने वाले को दो साल की सरत कैद की सजा कानून धा० २९५ ।

२—किसी धर्म क्रिया म हानि पहुँचाने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २९६ ।

३—किसी को खोटा उपदेश देने वाले को एक साल की सरत कैद की सजा कानून धा० १०८ ।

४—हवा बिगडे ऐसा पदार्थ रास्ते में डालने वाले को पाच सौ रुपये दण्ड, कानून धा० २७८ ।

५—आम रास्ते पर जुआ खेलने वाल को दो सौ रुपये दंड कानून धा० २९० ।

६—वाभित्स पुस्तक वेचने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून धा० २९२ ।

७—किसी की निन्दा करने वाले, छपाने वाले, व कलक दन वाले को दो साल की सरत कैद की सजा कानून धा०, ४९९ ।

(छ काय सिद्धि भाग १)

(तर्क, अनुमान और वैज्ञानिक दृष्टि से)

सुमति—भाई जयत, छ काय क्या ।

जयत—सर्वज्ञ प्रभु ने ससारी जीवों को छ प्रकार मे पहिचाना है। उन देह धारी जीवों को छकाय कहते है। सिद्ध (मुक्त) जीवों के सिवाय सारे ससारी जीव छकाय में आ जाते हैं।

सुमति—छकाय के नाम कहोगे भाई ?

जयत—मित्र सुमति सुनो, १ पृथ्वी काय (माटी पत्थर आदि में रहने वाले जीव), २ अपकाय (जल के जीव), तेउकाय (अग्नि के जीव), ४ वाउकाय (हवा के जीव) वनस्पतिकाय (लीलोतरी, कदमूल, काई के जीव), और त्रसकाय (हिलते डुलते जीव बेइन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक),

सुमति—तो भाई क्या त्रसकाय के सिवाय दूसरे जीव हिलते डुलते नहीं ।

जयत—ना, भाई, । दूसरे सब जीव एक स्थान मे पड़े रहते है। इसीलिए इन जीवों को स्थावर (स्थिर रहने वाले) जीव कहते हैं। व आपसे आप हिलडुल नहीं सकते ।

सुमति—भाई जयत । पृथ्वी आदि स्थावर (स्थिर रहने वालों) मे जीव है क्या ? उनकी प्रतीति कैसे हो ? वे दिखाई तो देते नहीं, फिर मानने में कैसे आवे ।

जयत—भाई, अपना ज्ञान ऐसा निर्मल नहीं कि जिससे अपन सब जान सकें । यूरोप और अमेरिका की हकीकत समाचार

पत्रों में पढकर हम सच मानते हैं। बड़ों के कथन को भी सच मानते हैं। इसी प्रकार छ काय का स्वरूप तीर्थंकर प्रभु जैसे सर्वज्ञ बतागए हैं और गणधरों ने यह स्वरूप शास्त्रों में गूँथा है। ऐसे महापुरुषों के वचनों पर अपने को विश्वास रखना चाहिये।

सुमति—मित्रवर माना कि अपन तो विश्वास (श्रद्धा) रक्खेंगे लेकिन दूसरों के दिल में यह बात कैसे जमाई जाए ? अभी तो विज्ञान का जमाना है। लोक प्रत्यक्ष प्रमाण मागते हैं। उसका फिर क्या ?

जयंत—भाई, विश्वास रखे बिना तो काम ही नहीं चलता। बड़ों के वचन पर विश्वास न हो तो सच्चे मा बाप कौन है, यह भी मालूम न हो सकता। इसलिए अपने वीतराग देव के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिए। साथ यह भी जरूरी है कि इस बात को तर्क और प्रमाण से भी सिद्ध करने का भी प्रयत्न करें।

छ काय (भाग २)

सुमति—सुज्ञ बंधु ! आपका कहना ठीक है। मुनि महाराज भी फरमाते हैं कि सच्चे (निर्दोष और निस्पृह) देव, गुरु धर्म पर श्रद्धा रखना ही समकित का लक्षण है, परन्तु भाई, अभी के जमाने में केवल श्रद्धा ही से काम नहीं चलता। इसलिए बाहि... के प्रमाण से आप मुझे छ काय जीवों की सिद्धि करके बताओ ऐसा मैं इच्छुक हूँ।

जयंत—जिज्ञासु भाई, सुन ! पृथ्वी काय में चैतन्य (जीव) है, इस बात की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं —

१—जैसे मनुष्य के शरीर का घाव भरता है वैसे ही खोदी हुई खान आपसे आप भर जाती हैं।

२—जैसे मनुष्य के पाँव का तला घिसता और बढता है वैसे ही जमीन (पृथ्वी) भी रोजाना घिसती और बढती है।

३—जिस तरह बालक बढता है वैसे पर्वत भी धीरे धीरे बढते मालूम होते हैं।

४—लोह चुम्बक लोह को खींचता है, यह बात उसकी चैतन्य शक्ति को प्रकट करती है। मनुष्य को तो लोह को लेने के लिए उसके पास जाना पड़ता है जब कि लोह चुम्बक तो लोह को आपसे आप खींच लेता है।

५—पथरी का रोग हो जाता है तो बताया जाता है कि मूत्राशय में सचेत ककर बढता है।

६—मच्छी के पेट में रहा हुआ मोती भी एक प्रकार का पत्थर होता है और वह भी बढता है।

७—मनुष्य के शरीर मे हड्डी होती है लेकिन उसमे जीव होता है उसी प्रकार पत्थर में भी होता है।

सुमति—ज्ञानीमित्र पृथ्वी काय में जीव है, यह साबित करने के लिए आपने तर्क अनुमान से ठीक प्रमाण बताए। अब अप काय के लिए कोई प्रमाण बताने की कृपा करें।

जयत—प्रिय मित्र सुन। अप (पानी) काय जीव की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं

१—जिस तरह अडे म रहे हुए प्रवाही पदार्थ में पञ्चेन्द्रिय पना का पिण्ड होता है वैसे ही प्रवाही पानी भी जीवों का पिण्ड रूप है।

२—मनुष्य तथा तिर्यच भी गर्भ अवस्था की शुरुआ में प्रवाही (पानी) रूप होते हैं उसी तरह पानी में भी जी होता है ।

३—जैसे शीत काल में मनुष्य के मुख में से भाफ निकलत है वैसे ही कूए के पानी से भी गर्म भाफ निकलती है

४—जैसे सरदी में मनुष्य का शरीर गर्म रहता है वैसे ही कूए का पानी भी गर्म रहता है ।

५—गरमी में जैसे मनुष्य का शरीर शीतल रहता है वैसे ही कूए का जल भी शीतल रहता है ।

६—मनुष्य की प्रकृति में जैसे शरदी या गरमी रहा हुई है वैस ही पानी में भी, ऐसी ही प्रकृति है ।

७—जैसे गाय का दूध नित्य निकालने ही से स्वच्छ रहता है और नित्य न निकालने से बिगड़ता है वैसे ही कूए का पानी रोज निकालने से स्वच्छ और सुंदर रहता है और न निकालने से बिगड़ जाता है ।

८—जैसे मनुष्य शरीर शरदी में अकड़ जाता है वैसे ही शर्दी में पानी ठण्डा होकर बर्फ जम जाता है ।

९—जैसे मनुष्य बाल, युवा और वृद्ध अवस्था में रूप बदलता है वैसे ही पानी की भाफ, बरसात और बर्फ के रूप में अवस्था पलटती है ।

१०—जैसे मनुष्य देह गर्भ में रह कर पकता है वैसे ही पानी बादल के गर्भ में छ मास रहकर पकता है । अपक अवस्था में कच्चे गर्भ की तरह ओले (गड़े) गिरते हैं ।

छ काय (भाग ३)

सुमति—ज्ञानी बन्धु ! पृथ्वी और अपकाय में जीव हैं, यह बात आपने ऐसी सरल रीति से समझा दी है कि यह मेरे दिल में बहुत जल्दी उतर गई, परन्तु भाई ! मुझे माफ करना, अग्नि से तो अपन लोग जल मरते हैं ऐसे स्थान में जीव कैसे हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो तेउकाय में जीवों की सिद्धि करके बताने की कृपा करें।

जयत—हा भाई ! इस मे शका की कोई बात नहीं। अग्नि भी फिर जीवों का पिण्ड है। अग्नि श्वासोश्वास बिना नहीं जी सकता, उसके कारण सुन —

१—जैसे बुखार में गर्म हुए शरीर में जीव रह सकता है वैसे ही गर्म आग में भी जीव रह सकते हैं।

२—जैसे मृत्यु होने पर प्राणी का शरीर ठंडा पड़ जाता है वैसे ही अग्नि बुझने से (जीवों के मरने से) ठंडी पड़ जाती है।

३—जैसे आगिए के शरीर में प्रकाश है वैसे ही अग्नि काय के जीवों में प्रकाश होता है।

४—जैसे मनुष्य चलता है वैसे अग्नि भी चलती है (आग फैल कर आगे बढ़ती है)।

५—*जैसे प्राणी मात्र हवा से जीते हैं वैसे ही अग्नि

---

*धधकते हुए लकड़ यदि तुरत दब दिए जावें तो बुझ कर कोयला हो जाते हैं और उघाड़े हों और हवा मिलती रहे तो कुछ समय तक जीवित रह सकते हैं, भस्म में अग्नि के जीव मरने पर राख हो जाता है।

भी हवा से जीता है (बिना हवा के जलता हुई आग अथवा दीपक बुझ जाता है ।)

६—जैसे मनुष्य आक्सिजन (प्राण वायु) लेता है और कार्बन (विष वायु) बाहिर निकालता है वैसे ही अग्नि भी अक्सिजन लेकर कार्बन बाहिर निकालता है ।

७—कोई जीव अग्नि का खुराक लेकर जीते हैं जैसे, भरतपुर के पास एक गाँव में एक बछड़ा घास के बदले आग खाता है ।

मारवाड़ के रेगिस्तान में बिना पानी सख्त गर्मी में लाखों चूहे जीते हैं ।

चूने की भट्टी के चूहे अग्नि ही में जीते हैं । फिनिक्स पक्षी को भी अग्नि में पड़ने से नवजीवन मिलता है । आम्र, नीम आदि वृक्ष ग्रीष्म ऋतु में) सख्त ताप में ही फलते-फूलते हैं ।

जिस प्रकार दूसरे जीव गर्मी के बढ़ने पर तथा गर्मी में रह सकते हैं उसी प्रकार अग्नि काय के जीव अग्नि में रह सकते हैं ।

सुमति—ठीक है भाई । अब वायुकाय में जीव हैं उनकी सिद्धि कृपा कर बतानी चाहिये ।

जयंत—वाउकाय (हवा पवन) भी जीवों का पिण्ड रूप है और यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

१—हवा हजारों कोस चल सकता है और वह एरोप्लेन (हवाई जहाज-विमान) को चलने की गति दे सकती है ।

२—हवा दशों दिशाओं में स्वतन्त्र वेग से पहुँच सकती है और बड़े वृक्ष, महलातों को उखाड़ गिरा सकती है ।

३—हवा अपना रूप छोटे से बड़ा और बड़े से छोटा कर सकता है।

४—हवा में प्रत्येक स्थान में असख्य उड़ते हुए जीव हैं, यह विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। सूई के अग्र भाग जितनी हवा में लाखों जीव बैठ सकते हैं। उन्हें थेक्सस कहते हैं। भगवान ने तो पहिले वायुकाय में जोव बताए हैं और उन जीवों की दया पालने ही के लिए साधु लोग मुँह पर मुँहपत्ति रखते हैं और इस प्रकार वायुकाय की रक्षा करते हैं। श्रावकों के लिए भी सामायिक, पोषध आदि धार्मिक क्रिया करते समय तथा इसी प्रकार साधुओं के साथ बात चीत करते वक्त भी मुँहपत्ति रखने का आज्ञा है।

छ काय (भाग ४)

सुमति—प्रेमी वन्धु ! आपने अपार कृपा करके पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु काय मे रहे हुए जीवों की सिद्धि कर दिखाई। अब कृपा करके वनस्पति में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर बतावें तो मैं आभारी होऊँगा।

जयत—ज्ञान प्रेमी भाई, पृथ्वी आदि स्थावर जीवों आदि के सम्बन्ध की सारी दलीलें आप समझ गए हैं तो वनस्पति के जीवों की सिद्धि समझने में देर नहीं लगेगी, क्यों कि आज विज्ञान में निपुण सर जगदीशचन्द्र बोस जैसों ने अनेक सभाएँ कर के यह आम तौर पर सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति भी जीवों का पिण्ड है।

सुन—१—मनुष्य जिस तरह माता के गर्भ में पैदा होता है

और अमुक समय तक गर्भ में रहने के बाद बाहर आता (जन्म लेता है)। इसी प्रकार वनस्पति भी पृथ्वी माता के गर्भ वान को अमुक समय तक रहने पर ही अंकुर रूप से बाहि आती है।

२—मनुष्य जैसे छोटा उमर से धीरे २ बढ़ता है वैसे वनस्पति भी बढ़ता है।

३—मनुष्य जैसे बाल, युवा और वृद्ध अवस्था पाता है वै ही वनस्पति भी तीनों अवस्था पाता है।

४—जैसे शरीर से किसी अंग के जुदा होने पर वह निर्जी हो जाता है वैसे ही वनस्पति डाली, पत्ते आदि के निज से जु होने से निर्जीव हो जाती है।

५—जैसे मनुष्य के शरीर में छेद होने से लोहू निकलता है वैसे ही वनस्पति में छेद होने से प्रवाही रक्त निकलता है।

६—जैसे खुराक न मिलने से मनुष्य सूख जाता है और खुराक से पुष्ट बनता वैसे ही वनस्पति खुराक मिलने से चौमास में विकसित होती तथा खुराक कम मिलने पर सूख जाती है।

७—जैसे मनुष्यादि श्वासोश्वास लेते हैं वैसे ही वनस्पति भी श्वासोश्वास लेती है (दिन में कार्बन ले कर आक्सीजन निकालती है तथा रात में आक्सीजन लेकर कार्बन निकालती है)

८—अनार्य मनुष्य जैसे मांसाहारी होते हैं वैसे ही कई वनस्पति मक्खी, पतंगिए आदि खाती हैं। (जन्तुओं के पत्तों पर बैठते ही पत्ते बंध हो जाते हैं।)

९—चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा के तथा सूर्यमुखी सूर्य के गमन से खिलते तथा अस्त होने पर बंध होते हैं।

१०—डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध कर दिया है कि—

'वनस्पति सुन्दर राग के मीठे शब्दों से खिलती है"

"अनिष्ट राग और उलहने से दुखी होती है"

"लजालु आदि वृक्ष छूते ही सङ्कुचित होते हैं"

"मूल में खुराक और पत्तों में हवा लेकर जीते हैं" ऐसे कारणों से विज्ञान ने सिद्ध किया है कि वनस्पति काय में जीव है।

त्रस काय में दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय वाले जीवों का समावेश होता है। इसमें जीव हैं, यह विश्वविख्यात है।

काड़, लट, जोंक, शंख, सीप को दो इन्द्रियाँ, जू, लीख, कीड़े, मकोड़े को तीन, मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि को चार तथा मनुष्य, पशु, पक्षियों को पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

उपवास और अमेरिकन डॉक्टर्स

(उपवास चिकित्सा में से)

(१) पेट पूर्ण होने से भोजन से स्वयं अरुचि होती है, फिर भी अज्ञानी लोक आचार चटनी और मसाला के निमित्त से ज्यादा भोजन करके दाट लगाते हैं। वह विष समान हानि करता है।

(२) शरीर खुद खराब वस्तुओं स्थान नहीं देता है, मल मूत्र तथा पसीना आदि को उत्पन्न होते ही फेंक देता है।

(३) वारी वारणे, बध करके सोने के बाद वारी खोलने से, शरदी लगती है किन्तु हवा में सोने से शरदी नहीं लगती है। ज्यादा भोजन करने से मल सड़ने से दिमाग में दर्द व शनेखम आदि होत हैं।

(४) शरीर के लिये हवा, बहुत कीमती पदार्थ है हवा से शरीर को कभी नुकसान नहीं होता है।

(५) शरीर में अन्न जलादि के सिवाय सर्व वस्तु विष का काम करती हैं।

(६) शरीर अपने भीतर रात्रि दिन झाड़ु देकर रोग को बाहिर निकालता है।

(७) उपवास (लंघन) करने से जठराग्नि रोग को भस्म करता है।

(८) बुखार आनेके पहिले बुखार की दवा लेना यह निकलते विष को शरीर में बढाने के समान है।

(९) ऐसा एक भी रोग नहीं है जो उपवास (लंघन) से न मिट सके।

(१०) स्वाभाविक मृत्यु से दवाई से ज्यादा मृत्यु होती है।

(११) एक दवाई शरीर में नये बीस रोग पैदा करते

(१२) अनुभवी डाक्टरों को दवाई का विश्वास नहीं

(१३) बिना अनुभव वाले डाक्टर का करते है।

(१४) दुनिया को निरोगी बना एक इलाज ढूढा है। वह यह है कि दवाइ

(१५) उपवास करने से मस्तिष्क (मगज) शक्ति घटती नहीं है।

(१६) मनुष्य का खान पान पशु ससार से भी बिगडा हुआ है।

(१७) ज्यादा खाने से शरीर में विष और रोग बढता है।

(१८) दुष्काल की मृत्यु सख्या से ज्यादा खाने वाले की मृत्यु सख्या विशेष होती है।

(१९) ज्यादा खाना अन्न को विष और रोग रूप बनाने के समान है।

(२०) कचरे से मच्छर पैदा होते हैं और उसका दूर करना परम जरूरी है। उसी तरह ज्यादा खाने से रोग रूप मच्छर पैदा होते हैं और उनको भी दूर करना परम आवश्यक है। दूर करने का एक सरल उपाय उपवास (लघन) है।

(२१) ज्यों ज्यों अनुभव बढता है त्यो त्यों डाक्टरों को दवाई के अवगुण (नुकसान) प्रत्यक्ष रूप से मालूम होते जाते हैं।

(२२) बडे बड़े डाक्टरों का कहना है कि रोग को पहिचानने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। केवल अन्दाज से काम लेते हैं।

(२३) रोग उपकारक है। वह चेताता है कि अब नया कचरा शरीर में मत डालो, उपवास से पुराने को जला डालो।

(२४) शरीर को सुधारने वाला डाक्टर शरीर ही है। दवाई को सर्वथा छोड़ विवेक पूर्वक उपवास करने से सौ रोगी में निव्वे रोगी सुधरते हैं वही दवाई लेवें तो निव्वे रोगी बिगड़ते हैं।

(२५) जैसे शरीर म घाव स्वय भर जाता है वैसे सब रोग विना दवाई क मिट जाते हैं।

(२६) शरीर म उत्पन्न हुए विष को फेंकने वाला रोग है। घर के मेल व कचरे को ढाकने तुल्य दवाई है जो थोड़ समय अच्छा दिखाव करके भविष्य म भयकर रोग फूट निकलते हैं जब कि शुद्ध उपवासा से रोग के तरज नष्ट हाते हैं। यह मले कचरे को फेंकने क तुल्य है। कचरा फेकने म प्रथम थोड़ा कष्ट पीछे बहुत सुख इसा प्रकार तपश्चर्या में थोड़ा कष्ट पड़ता है। कचरा ढाकने में पहिले थोड़ा आराम पाछ से बहुत दु ख। इसी प्रकार दवाइया से राग ढाकने मे प्रथम लाभ पाछ से बहुत दु ख निरन्तर भोगने पड़ते हैं।

(२७) ज्यों दवाई बढ़ती जाती है त्यो रोग भी बढ़ते जाते हैं। मनुष्य दवाइया का आतुरता व मोह छोड़कर कुदरत के नियम पालेंगे तब ही सुखी होंवगे।

(२८) दवाई से रोग नष्ट होता है, यह समझ शरीर का नाश करने वाला है। आज इसी से जनता रोगों से सड़ रही है।

(२९) सरदी लगने पर तम्बाकू आदि दवाइ लेना विष को भीतर रखना है।

(३०) एडवर्ड सातवें बादशाह का डाक्टर कह गया है कि डाक्टर लोग रोगी के दुश्मन हैं।

(३१) अज्ञान के जमाने में दवाई का रिवाज शुरू हुआ था।

(३२) दवाइएँ विष का बनता हैं और व शरीर में विष बढ़ाती हैं।

(३३) शरीर में विष डालकर सुखी कौन हो सकता है।

(३४) जुल्लाब लेने से रोग भीतर रह जाता है किन्तु उपवास से रोग जड़ मूल से नष्ट होकर आराम होता है।

(३५) उपवास करने वाले रोगी को मुँह में और जीभ पर उत्तम स्वाद का अनुभव होवे तब रोग का नष्ट होना समझना चाहिए।

(३६) शरीर में जो रोग कार्य करता है वही काम दवाई करती है।

(३७) अनुभवी डाक्टर कहते हैं कि दवाई से रोगी ज्यादा बिगड़ते हैं।

(३८) दवाई न देनी यह रोगी पर महान् उपकार करने के समान है। केवल कुदरती पथ्य हवा भावना आदि परम उपकारक हैं।

(३९) ज्यों-ज्यों डाक्टर्स बढ़ते हैं त्यों-त्यों रोग और रोगी बढ़ते जाते हैं।

(४०) डाक्टर घट जायँ तो रोग और रोगी भी घट जायँ।

(४१) रोगी के पेट में अन्न न डालने से रोग विचारा आप ही स्वय नष्ट हो जाता है।

(४२) दवाई को निकम्मी समझे वही सच्चा डाक्टर है।

(४३) हाथ, पैर आँख को आराम देते हो वैसे उपवास करना यह जठर पेट को आराम देना है।

(४४) अमेरिका में डाक्टर लोग रोगी को उपवास कराके

रात्रि को देखते रहते हैं कि शायद यह गुप्त रीति से खाना खा न ले।

(४५) तीन दिन के बाद उपवास में कठिनाई मालूम नहीं पड़ती है।

(४६) टूटी हड्डी का जुड़ना और बन्दूक की गोली की मार का भी उपवास से आराम पहुँचता है।

(४७) पशु पक्षी भी रोगी होने के बाद तुरत आराम न न हो वहाँ तक खाना पीना छोड़ देते हैं।

(४८) कफ, पित्त और वायु में बधघट होने से रोग होता है।

(४९) वायु का सात दिन में, पित्त का दश दिन में, कफ का रोग बारह दिन में अन्न न लेने से (उपवास करने से) आराम होता है और रोग नाश हो जाता है।

(५०) दवाई से थक्कर अमरिकन डॉक्टरों ने उपवास की अनादि सिद्ध दवाई शुरू की है।

(५१) जो दवाई नहीं करता है वह सब रोगियों से ज्यादा सुखी है।

(५२) भूख न लगना रोग नहीं है किन्तु जठराग्नि की नोटिस है कि पेट में माल भरा हुआ है। नये माल के लिए स्थान नहीं है। एकाध उपवास कीजिएगा।

(५३) उपवास करने से शरीर दुखता है, चक्कर आते हैं। मुँह का स्वाद बिगड़ता है। इसका प्रयोजन यह है कि शरीर में से रोग निकल रहा है।

(६) दुष्काल का मुख्य कारण श्रीमन्तों की फिजूल खर्ची है (ब्याह के और नुगत के जीमण, मुख्य कारण हैं)।

(७) स्थावर जाते समय पुत्र के पीछे रोना अमंगल, वैसे मृत्यु के बाद रोना भी महा अमंगल है।

(८) मृत्यु समय पश्चात्ताप करना होगा कि मैंने ठांस ठांस कर खाया, तिजोरी में जमा किया। किन्तु दुखी, दरिद्री और गरीब को न खिलाया। सुमार्ग में दान न दिया।

(९) हाथ से काम करने में कष्ट मानने वाली सेठानियों! यह कष्ट क्या प्रसूति समय से भी ज्यादा है? हाथों से काम करना बन्द करने ही से प्रसूति की वेदना होती है यह काम ककरी की मार से बच कर गोली की मार मंजूर करने तुल्य है।

(१०) एक बैल गाड़ी बनाने की क्रिया, और रेल के डिब्बे को बनाने की क्रिया का क्या विचार भी किया है?

(११) खादी में रेंटिये की क्रिया और मिल में बनते हुए कपड़े में सर्व मिल की क्रिया लगती है।

(१२) भिखारी श्रीमंत या गरीब?

(१३) भिखारी सूखी रोटी के टुकड़े के लिये भीख माँगता है जब कि श्रीमान सीरे पूड़ी के लिए। भीखारी माँग कर लेता है जब कि आज श्रीमंत प्राय झूठ कपट चोरी से जगत् का धन हरते हैं और कुमार्ग भोग में लगाते हैं।

(१४) लुटेरे से शाहूकार का त्रास जगत में बढ़ गया है। इसी से सुख सम्पत्ति और शान्ति घट रही है।

(१५) कचहरी में लुटेरों से शाहूकारों के केस ज्यादा चलते हैं।

(१६) गर्भ बाहिरआने के बाद बालक को दूध न पाने वाली माँ पापिन कि शिक्षा न देने वाली ?

(१७) नीति का धन दूध के समान और अनीति का धन खून के समान है।

(१८) दया देवी का दर्शन धर्म स्थान में नहीं किन्तु कसाई खाने मे होते हैं। कारण वहाँ कठोर हृदय भी अनुकंपा से पिगल जाता है

(१९) किसान खेती के पहिले बीज की जाच करता है। क्या आपने कभी व्याह के समय सतान की तदुरस्ती का विचार किया है ?

(२०) एक अशिक्षित स्त्री देश का नाश करती है और शिक्षित स्त्री देश का उद्धार कर सकती है।

(२१) सौ मनुष्य की पैदाइश लूटने वाला एक राक्षस या अन्य कोई ?

(२२) सौ मनुष्य जितना भोजन खर्च करने वाला एक राक्षस या अन्य कोइ ?

(२३) जो रस्सी आत की बनी हुई है उसको क्या आप कदोंरा रूप से पहिन सकते हो ?

(२४) जिस वस्त्र के बनने में पचेंद्रिय जीवों की चरबी लगती है, उसको क्या आप पहिन सकते हो ?

(२५) नुगवा धनवान को निर्धन और निर्धन को भिखारी, (मगता) बनाता है।

(२६) शास्त्र—श्रवण—क्रिया गर्भ धारण समान है जिसे शुद्ध मन से करनी चाहिये। उसका पालन प्रसव-तुल्य है। कुज्ञान

कुसतान और सुशील सुसवान तुल्य है।

(२७) समय पलटता ही है किन्तु वृत्तियें पलटती है क्या?

(२८) वेदाती ईश्वर को और जैनी कर्म को प्रधान पद देकर पुरुषार्थ हीन हो रहे हैं। यह तत्त्व का दुरुपयोग है, शास्त्र का शस्त्र बनाना है

(२९) ज्ञान प्राण है और क्रिया शरीर है।

(३०)प्रातः समय प्रभु का नाम लेते हो या तम्बाकू, बीड़ी, चाय आदि कुव्यसनों का ?

(३१) महावीर के भक्त शूरवीर और धीर थे। सुदर्शन श्रावक ने मोगरपाणी यक्ष का सामना किया था और उसको पराजित कर भगा दिया था। निर्भय व सत्य शीलधारी पुरुष सदा अजेय होते हैं

(३२) पूर्व काल म कन्या दान के साथ गौ दान देने का रिवाज था। आज विषय वर्धक वस्तुओं का दान दिया जाता है।

(३३) युरोपियनों ने तुम्हारा कितना अनुकरण किया? और तुमने उनका कितना अनुकरण किया ? प्राय मौज शोक का अनुकरण किया है परतु साथ पुरुषार्थ, धैर्य ऐक्य उदारता आदि उनके नहीं लिये।

(३४) दस मनुष्य की रक्षा करने योग्य एक युवा श्रीमत की रक्षा के लिये दस मनुष्य नौकर चाहिये।

(३५) विलायती घी और आटा सस्ता देते हैं और यहाँ क घी और आटे को महँगे दाम म वे लोग खरीदते हैं इसके रहस्य को कब समझोगे ?

(३६) दूध, दही, घी कीमती या वीर्य ?

(३७) क्या वीर्य की दूध, दही, घी जितनी भी रक्षा करते हो ?

(३८) थोकड़े के ज्ञाता ! आपके ज्ञान का सार क्या है। क्या घर के आस पास समुर्छिम मनुष्य तो नहीं मर रहे हैं। घर की, व देश की हालत व जैनियों का दशा को भी कभी चितारोगे? और फिजुल खर्च हटाओगे ? शिक्षा प्रचार करके न्याय नीति सपंत्र सत्य, शील, पुरुषार्थ और सयम में श्रेष्ठ प्रजा तैयार करने म कितना तन धन मन अर्पण करोगे ? अत में सब छूटेगा तो हर्ष से अच्छे क्षेत्र मे बीज बो देओ, अन्यथा बीज (धन तन बुद्धि) सड जायँगे (नष्ट हो जायँगे) और शुद्ध व उत्तम क्षेत्र म बीज को बोदेओगे तो अपार निपज मिलगी।

(३९) मिथ्यात्वी हजारों ऐसे हैं जिन्होंने सारी पूँजी विद्या प्रचार में देकर जिन्दगी सेवा भाव में दे दी हैं, जैन श्रावक कितने ऐसे दये हैं ?

(४०) रोज परिग्रह को पाप का मूल अनत दु ख बढाने वाला, इह लोक परलोक में भय, चिन्ता, शोक और व्याकुलता पैदा करने वाला चिन्तवन करते हो। क्या वह सच्चे हृदय की भावना हो तो जैन समाज इतनी गिरी हुई रह सक्ती है ?

(४१) गोद लेने का मोह इसी जन्म में अनेक दु ख का कारण प्रगट दीख रहा है फिर भी मिथ्या रूढ़ी, लोक लज्जा व अज्ञान वश कष्ट उठा कर सब धन औरों को देते हैं। क्या आप परमार्थ में खर्चना अच्छा नहीं मानते ? यदि उत्तम है तो आज से गोद लेन का त्याग कर लेवें और गोद आकर अनर्थ कारी रूढी को मन्द न देव व कलह से बचें

(४०) गोद लना अथात पाप को गोद म बिठाना है, वह पुत्र जितने विषय भोग आरंभ करगा और जितना पीढ़ी नाम रहगा वहाँ तक सब पाप में हिस्सा ठट तक चला आवेगा। नाम का अंत करन स पाप का अन्त हा जाता है।

(४३) रामलाल, वरदभान आदि कोई भी आपका नाम ले आपके समान नामधारी हजारो मनुष्य हैं। आपको उस नाम म क्या लाभ ?

(४४) नाम तो पुद्गल का पिंड है कम है निश्चय स दुखदायी है उसस बचो सब लक्ष्मी को सत्य जैन धम का प्रचार करन में विद्या व सदाचार का पुनरुद्धार करन में लगाने स आपका नाम अजर अमर होवेगा।

(४५) जैसा बीज खत म डालोगे वैसे फल लगेंगे, एक सेर जहर पीकर एक ताला उल्टी करने स मरण से नहीं बच सकते एक सेर जहर का जगह पाच सेर वमन करने से कुछ बचन की आशा है। इसी प्रकार ससार खच, पर खर्च से अनक गुण उत्तम दान दागे तो बचन की आशा है। सब जीवों को सद्बुद्धि प्राप्त हाकर सच्चरित्र की प्राप्ति होओ, यही भावना है।

काव्य विलास

श्री परमात्म छत्तीसी

दोहे

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीस ।
परम भाव उर आन के, प्रणमत हूं नमिशीस ॥१॥
एक ज्यों चेतन द्रव्य है, जिनके तीन प्रकार ।
वहिरातम अन्तर तथा, परमातम पद सार ॥२॥
वहिरातम उसको कहे, लखे न आत्म स्वरूप।
मग्न रहे परद्रव्य मे, मिथ्यावत अनूप ॥३॥
अंतर-आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ।
चौथे अरु पुनि बारवें, गुणथानक लो सोय ॥४॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रकट्यो शुद्ध स्वभाव ।
लोकालोक प्रमान सब, झलके जिनमें आय ॥५॥
वहिरातमा स्वभाव तज, अंतरातमा होय ।
परमातम पद भजत है, परमातम है सोय ॥६॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ।
परमातम को ध्यावते, यह परमातम होय ॥७॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ।
परसे भिन्न विलोकिये, ज्योति अलख सोइ ईश ॥८॥

श्री ब्रह्मविलास में से साभार उद्धृत ।

जो परमात्मा सिद्धमें, सो ही यह तन माहि।
मोह मैल दृग लग रहा, जिससे सूझे नाहि ॥९॥
मोह मैल रागादिका, जा छण कीजे नाश।
ता छण यह परमातमा, आपहि लहे प्रकाश ॥१०॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध।
बीचकी दुविधा मिट गई, प्रकट हुई निज रिद्ध ॥११॥
मै ही सिद्ध परमातमा, मै ही आतमाराम।
मै हों ज्ञाता ज्ञेय को, चेतन मेरा नाम ॥१२॥
मै अनत सुख को धनी, सुखमय सुभलसभाव।
अविनाशी आनदमय, सो हूँ त्रिभुवन राय ॥१३॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान।
गुण अनत से युक्त यह, चिदानद भगवान ॥१४॥
जैसो सिद्ध क्षेत्रे बसे, तैसो यह तममा हि।
निश्चय दृष्टि निहारते, फेर रच कुछ नाहि ॥१५॥
कर्मन के सयोग से, भये तीन प्रकार।
एक आतमाद्रव्य को, कर्म नचावन हार ॥१६॥
कर्म सघाती आदि के, जोर न कछु बसाय।
पाई कला विवेक की, रागद्वेष बिन जाय ॥१७॥
कर्मों की जड़ राग है, राग जरे जड जाय।
प्रकट होय परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
काहे को भटकत फिरे, सिद्ध होने के काज।

राग द्वेष को त्याग दे, भैया सुगम इलाज ॥१९॥
परमातम पद को धनी, रंक भयो विललाय।
रागद्वेष की प्रीति से, जनम अकारथ जाय ॥२०॥
राग द्वेष की प्रीति तुम, भूलि करो जिय रच।
परमातम पद ढाक के, तुमहि किये तिरजच ॥२१॥
जप तप सयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेष के जागते, ये सब सोये जाहि ॥२२॥
रागद्वेष के नाशते, परमातम परकाश।
रागद्वेष के जागते, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामि को, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बात की बात यह, तुभको दिनी बताय।
जो परमातम पद चहे, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
रागद्वेष के त्याग बिन, परमातम पद नाहि।
कोटि-कोटि जप तप करे, सबहि अकारथ जाहि॥२६॥
दोष है यह आत्मको, रागद्वेष का सग।
जैसे पास मजीठ के, वस्त्र और ही रग ॥२७॥
वैसे आतम द्रव्य को, रागद्वेष के पास।
कर्मरग लागत रहे, कैसे लहे प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मा का जीतना, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदे बिन नहि मिटे, दुष्ट जाति बिपरीत ।२९।

लक्षोपक्षो के किये, ये मिटै न के नाहि।
ध्यान अग्नि परकाश के, होम देऊ तिहि माहिं ॥३०॥
ज्यों दारुके गजको, नर नहिं सके उठाय।
तनक आग सयोग से, क्षण इक मे उड जाय ॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात।
रागद्वेष के त्याग न, कर्मशक्ति जर जात ॥३२॥
परमात्मा के भेद द्वय, रूपी अरूपी मान।
अनंत सुखमे एक से, कहने के दो स्थान ॥३३॥
भैया वह परमातमा, वैसा है तुम माहि।
अपनी शक्ति सम्हालके, लखो वेग ही ताहि ॥३४॥
रागद्वेष को त्याग के, धर परमातम ध्यान।
ज्यौं पावे सुख सपदा, 'भैया' इम कल्यान ॥३५॥
सवत विक्रम नृप को, सत्रह से पंचास।
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥३६॥

कर्म नाटक के दोहे

कर्म नाट नृत्य तोड के, भये जगत जिन देव,
नाम निरजन पद लह्यो, करूँ त्रिविधि तिहि सेव ॥१॥
कर्मन के नाटक नटत, जीव जगत के माहि।
उनके कुछ लक्षण कहूँ, जिन आगम की छाहिं ॥२॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावन हार।

नाचत है जिव स्वागधर, कर कर नृत्य अपार ॥३॥
नाचत है जिव जगत्त में, नाना स्वाग बनाय ।
देव नर्क तिरजच अरु, मनुष्य गति में आय ॥४॥
स्वाग धरे जब देव को, मानत है निज देव ।
वही स्वाग नाचत रहे, ये अज्ञान की टेव ॥५॥
और न को औररि कहै, आप कहै हम देव ।
अह के स्वांग शरीर का, नाचत है स्वयमेव ॥६॥
भये नरक में नारकी, करने लगे पुकार ।
छेदन भेदन दुःख सहे, यही नाच निरधार ॥७॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होत ।
यह तो स्वांग निर्वाह है, भूल करो मत कोप ॥८॥
नित अध गति निगोद है, तरा बसत जो हम ।
वे सब स्वाग हि खेल के, विचित्र धर्यो यह वश ॥९॥
उधर उधर के गिर पड़े, वे आवें इम ठौर ।
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यही स्वाग शिरमौर ॥१०॥
कबहू पृथिवी काय में, कबहू अग्नि स्वरूप ।
कबहू पानी पवन में, नाचत स्वाग अनूप ॥११॥
वनस्पति के भेद यह, ध्यास अठारह बार ।
तामें नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥१२॥
विकलत्रय के स्वाग में, नाचे चेतन राय ।
उसी रूप परिणाम गये, जरने कैसे जाय ? ॥१३॥

उपजे आय मनुष्य में, धरे पचेन्द्रिय स्वाग।
मद आठों मे मग्न बन, माती खाई भाग॥१४॥
पुण्य योग नृपति भये, पाप योग भये रक।
सुख दुख आपत्ति मान के, नाचन फिरे निशक॥१५॥
नारि नपुसक नर भये, नाना स्वाग रमाय।
चेतन से परिचय नहीं, नाच नाच गिर जाय।
ऐसे काल अनत से, चेतन नाचत तोहि।
'अज' तू आप म भारिये, सावधान किन होहि॥१७॥
सावधान जो जिव भये, ते पहुँचे शिव लोक।
नाच भाव सब त्याग के, विलसत सुख के थोक॥१८॥
नाचत है जग जीव जो, नाना स्वाग रमत।
देखत है उस नृत्य को, सुख अनत विलसत॥१९॥
जो सुख होवे देखकर नाचन में सुख नाहि।
नाचन में सब दु ख है, सुख निज देखन माहि॥२०॥
नाटक मे सब नृत्य है, सार वस्तु कछु नाहि।
देखो उसको कौन है? नाचन हारे माहि॥२१॥
देखे उसको देखिये, जाने उसको जान।
जो तुझको शिव चाहिये, तो उसको पहिचान॥२२॥
प्रकट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टि के देत।
लोकालोक प्रमाण सब, छण इकमें लखलेत॥२३॥
भैया नाटक कर्मते, नाचत सब ससार।
नाटक तज न्यारे भये, ये पहुँचे भवपार॥२४॥

॥ मन विजय के दोहे ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र जिह सुख अनत प्रतिभास ।
वंदन हों उन देव को, मन धर परम हुलास ॥१॥
मन से वंदन कीजिये, मनमें धरिये ध्यान ।
मन से आत्मा तत्त्व को, लखिये सिद्ध समान ॥२॥
मन खोजत है ब्रह्म को, मन सब करे विचार ।
मन बिन आत्मा तत्त्व का, कौन करे निरधार ॥३॥
मन सम खोजी जगत में, और दूसरो कौन ?
खोज ग्रहे शिवनाथ को, लहै सुखन को भौन ॥४॥
जो मन सुलटे आपको, तो सूझे सब साच ।
जो उलटे ससार को, तो सब सूझे काच ॥५॥
सत असत्य अनुभव उभय, मनके चार प्रकार ।
दोय फुके ससार को, दो पहुँचावे पार ॥६॥
जो मन लागे ब्रह्म को, तो सुख होय अपार ।
जो भटके भ्रम भाव में, तो दुख पार न वार ॥७॥
मन से बली न दूसरो, देख्यो इहि ससार ।
तीन लोक मे फिरत ही, जात न लागे वार । ८॥
मन दासों का दास है, मन भूपन का भूप ।
मन सब बातनियोग्य है, मनकी कथा अनूप ॥९॥
मन राजा की सैन सब, इन्द्रिन से उमराव ।
रात दिना दौड़त फिरे, करे अनेक अन्याव ॥१०॥

इन्द्रिय से उमराव जिह, विषय देश विचरत ।
भैया उस मन भूप को, को जीते बिन सत ॥११॥
मन चचल मन चपल अति, मन वहु कर्म कमाय।
मन जीते बिन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥१२॥
मन सम योद्धा जगत मे, और दूसरा नाहि।
ताहि पछाड़े सो सुभट, जीत लहे जग माहि ॥१३॥
मन इन्द्रिन कों भूप है, ताहि करे जो जेर।
सो सुख पावे मुक्ति के, इसमे कछु न फेर ॥१४॥
जब मन मू दो ध्यान मे, इन्द्रिय भई निराश।
तब इह आतमा ब्रह्मको, कीने निज परकाश ॥१५॥
मनसे मूरख जगत मे, दूजो कोन कहाय ?
सुख समुद्र को छोड़के, विष के वन मे जाय ॥१६॥
विष भक्षण से दु.ख वढे, जाने सब ससार।
तदपि मन समझे नहीं, विषयन से अति प्यार॥१७॥
छहो खड के भूप सब, जीत किये निज दास।
जो मन एक न जीतियो, सहे नर्क दुख वास ॥१८॥
छोड घास की झूपडी, नहीं जगत सो काज।
सुख अनत विलसत है, मन जीते मुनिराज १६॥
अनेक सहस्र अपछरा, वत्तिस लक्ष विमान।
मन जीते बिन इन्द्र भी, सहे गर्भ दुःख आन ॥२०॥
छाड घरहि वनमे वसै, मन जीतन के काज।

तो देखो मुनिराज ज्यों, बिलसत शिवपुर राज ॥२१॥
अरि जीतन को जोर है, मन जीतन को स्वाम ।
देख त्रिखंडी भूप को, पडत नर्क के धाम ॥२२॥
मन जीते जो जगत में, वे सुख लहे अनन्त ।
यह तो बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्री भगवन्त ॥२३॥
देख बडे आरंभ से, चक्रवर्ति जग माहिं ।
फेरत ही मन एक को, चले मुक्ति में जाहिं ॥२४॥
बाह्य परिग्रह रंच नहिं, मनमें धरे विकार ।
तांदुल मच्छ निहालिए, पडे नरक निरधार ॥२५॥
भावन ही से बंध है, भावन ही से मुक्ति ।
जो जाने गति भाव की, सो जाने यह युक्ति ॥२६॥
परिग्रह कारन मोह को, इम भाख्यो भगवान ।
जिह जिय मोह निवारियो तिहि पायो कल्यान ॥२७॥

ईश्वर-निर्णय दोहे

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीश ।
परमभाव उर आनके वदत हू नमि शीश ॥१॥
ईश्वर ईश्वर सब कहें, ईश्वर लखे न कोय ।
ईश्वर को सो ही लखे, जो समदृष्टी होय ॥२॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जो, वे पाये नहिं पार ।
तो ईश्वर को और जन, क्यों पावे निरधार? ॥३॥

ईश्वर की गति अगम है, पार न पायी जाय।
वेद स्मृति सब कहत है, नाम भजोरे भाय ॥४॥
ईश्वर को नो देह नहि, अविनाशी अविकार।
ताहि कहै शठ देह धर, लीनो जग अवतार ॥५॥
जो ईश्वर अवतार ले, मरे वहु पुन सोय।
जन्म मरन जो धरत है, सो ईश्वर किम होय॥६॥
एकनकी घा होयक, मरे एक ही आन।
ताको जो ईश्वर कहे, वे मूरख पहिचान ॥७॥
ईश्वर के सब एक से, जगत माहि जे जीव।
नहि किसी पर द्वेष है, सब पै शात सदीव ॥८॥
ईश्वर से ईश्वर लडे ईश्वर एक कि दोय।
परशुराम अरु राम को, देखहु किन जग लोय ॥६॥
रौद्र ध्यान वर्त जहा वहा धर्म किम होय।
परम वध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ? ॥१०॥
ब्रह्मा के खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस।
ताहि सृष्टिकर्ता कहे, रख्यो न अपनो सीस ॥११॥
जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल।
जो मार्यो इक बाण से, प्राण तजे ततकाल ॥१२॥
महादेव वर दैत्य को, दीनो होय दयाल।
आपन पुन भाग्यो फिर्यो, राख लियो गोपाल ॥१३॥
जिनको जग ईश्वर कहै, वह तो ईश्वर नाहिं।
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं ॥१४॥

ईश्वर सोही आतमा, जाति एक है तत।
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजत ॥१५॥
जो गुण आतम द्रव्य के, सो गुण आतम माहि।
जड़के जड़में जानिये, यामे तो भ्रम नाहि ॥१६॥
दर्शन आदि अनत गुण, जीव धरै तीन काल।
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रकट दोनो की चाल ॥१७॥
सत्यारथ पथ छोड के, लगे मृषा की ओर।
तै मूरख ससार मे, लहै न भव को छोर ॥१८॥
भैया ईश्वर जो लखे, सो जिय ईश्वर सोय।
यो देख्यो सर्वज्ञने, यामे फेर न कोय ॥१९॥

कर्त्ता अकर्त्ता के दोहे

कर्मन को कर्ता नही, धरता शुद्ध सुभाय।
ता ईश्वर के चरन को, वदू शीस नमाय ॥१॥
जो ईश्वर करता कहे, भुक्ता कहिये कौन ?
जो करता सो भोगता, यही न्यायको भौन ॥२॥
दोनो दोष से रहित है, ईश्वर ताको नाम।
मन वच शीस नवाय के, करू ताहि परिणाम ॥३॥
कर्मन को कर्ता है यह, जिसको ज्ञान न होय।
ईश्वर ज्ञान समूह है, किम कर्ता है सोय ॥४॥
ज्ञानवत ज्ञानहि करे, अज्ञानी अज्ञान।

जो ज्ञाता कर्ता कहै, लगे दोष असमान ॥५॥
ज्ञानी पै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय।
पंडित हिये विचार के, उत्तर दीजे सोय ॥६॥
अज्ञानी जड़तामयी, करे अज्ञान निशंक।
कर्ता भुगता जीव यह, यों भाखे भगवंत ॥७॥
ईश्वर की जिव जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान।
जो जीव को कर्त्ता कहो, तो है बात प्रमान ॥८॥
अज्ञानी कर्त्ता कहे, तो सब बने बनाव।
ज्ञानी हो जड़ता करे, यह तो बने न न्याव ॥९॥
ज्ञानी करता ज्ञान को, करे न कछु अज्ञान।
अज्ञानी जड़ता करे, यह तो बात प्रमान ॥१०॥
जो कर्ता जगदीश है, पुण्य पाप क्यों होय?
सुख दु:ख किसको दीजिये? न्याय करो बुध लोय ॥११॥
नरकन में जिव डारिये, पकड़ पकड़ के बाह।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥१२॥
ईश्वर की आज्ञा बिना, करत न कोऊ काम।
हिंसादिक उपदेश को, कर्त्ता कहिये राम ॥१३॥
कर्त्ता अपने कर्म को, अज्ञानी निर्धार।
दोष देत जगदीश को, यह मिथ्या आचार ॥१४॥
ईश्वर तो निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं।
ईश्वर को कर्ता कहै, वे मूरख जगमांहि ॥१५॥

ईश्वर निर्मल मुकुरवत्, तीन लोक आभास।
सुख सत्ता चैतन्य मय, निश्चय ज्ञान विलास ॥१६॥
जाके गुए तामें बसै, नहीं और में होय।
सूधी दृष्टि विलोकतें, दोष न लागे कोय ॥१७॥
वीतराग वाणी विमल, दोप रहित त्रिकाल।
ताहि लखै नहि मूढ़ जन, झूठे गुरु के वाल ॥१८॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखें न बाट कुबाट।
बिना चक्षु भटकत फिरे, खुले न हिये कपाट ॥१९॥
जौलों मिथ्यादृष्टि है, तौलों कर्त्ता होय।
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करे न कोय ॥२०॥
दर्व कर्म पुद्गलमयी, कर्त्ता पुद्गल तास।
ज्ञान दृष्टि के होत ही, सूझे सब परकाश ॥२१॥
जौलों जीव न जानही, छहों काय के वीर।
तौलों रक्षा कौन की, कर है साहस धीर ॥२२॥
जानत है सब जीव की, मानत आप समान।
रक्षा याते करत हैं, सबमें दरसन ज्ञान ॥२३॥
अपने अपने सहज के, कर्त्ता हैं सब दर्व।
मूल धर्म को यह है, समझ लेहु जिय सर्व ॥२४॥
'भैया' बात अपार है, कहँ कहा लो कोय।
थोड़े ही में समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥२५॥

वैराग्य-बोध के दोहे

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ।
मन वच शीस नमाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।
मूल दोनों के ये कहे, जाग सके तो जाग ॥२॥
क्रोध मान माया धरन, लोभ सहित परिणाम ।
येही तेरे शत्रु हैं, समझो आतमाराम ॥३॥
इन ही चारों शत्रु को, जो जीते जग माहिं ।
सो पावे पथ मोक्ष को, यामें धोखो नाहिं ॥४॥
जो लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म ।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत भर्म ॥५॥
जो कुटुम्ब के कारने, करत अनेक उपाय ।
सो कुटुम्ब अगनी लगा, तुझको देत जलाय ॥६॥
पोषत है जिस देह को, जोग त्रिविधि के लाय ।
सो तुझको नाए एक में, दगा देय खिर जाय ॥७॥
लक्ष्मी साथ न अनुसरे, देह चले नहिं संग ।
काढ़ काढ़ सुजनहिं कहे, देख जगत के रंग ॥८॥
दुर्लभ दश दृष्टांत सम, सो नरभव तुम पाय ।
विषय सुखन के कारने, चले सर्वस गुमाय ॥९॥
जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ।

चेतन चेतो अब तुम्हे, लहि नरभव अहिसार ॥१०॥
ऐसे मति विभ्रम भई, लगी विषय की धाय।
कै दिन कै छिन कै घडी यह सुख थिर ठहराय ॥११॥
पीतो सुधा स्वभाव की, जी ! तो कहूं सुनाय।
तू रीतो क्यों जात है, नरभव बीतो जाय। १२॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है सिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ॥१३।
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेष को सग।
ज्यों प्रगटे परमातमा, शिव सुख होय अभग ॥१४॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री भी म नाहि।
वैश्य शुद्र दोनो नही, चिदानद हू माहि ॥१५॥
जो देखें इन नयन से, सो सब विणस्यों जाय।
उनको जो अपना कहे, सो मूरख शिरराय ॥१६॥
पुद्गल को जो रूप है, उपजे विणसे सोय।
जो अविनाशी आतमा सो कछु और न होय ॥१७॥
देख अवस्था गर्भ की, कौन कौन दुःख होहि।
बहुर मगन ससार मे, सो लानत है तोहि ॥१८॥
अधो शीश ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार।
थोडे दिन की बात यह, भूलि जात ससार ॥१९॥
अस्थि चर्म मल मूत्र मे, रात दिनो को वास।
देखे दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥२०॥

रोगादिक पीडित रहै, महा कष्ट जो होय।
तब हू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥२१॥
मरन समय विललात है, कोई न लेय बचाय।
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछु बसाय ॥२२॥
फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोटि उपाय।
ताते वेगहि चेत हू, अहो जगत के राय ॥२३॥
भैया की यह वीनती, चेतन चितहिं विचार।
ज्ञान दर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार ॥२४॥

प्रश्नोत्तर ।

देव श्री अरिहन्त निरागी, दयामूल सुचि धर्म सोभागी ।
हित उपदेश गुरु सुसाधु, जे धारत गुण अगम अगाधु ॥१॥
उदासीनता सुख जग माही, जन्म मरण सम दु ख कोई नाहीं।
आत्मबोध ज्ञान हितकार, प्रबल अज्ञान भ्रमण ससार ॥२॥
चित्त निरोध ते उत्तम ध्यान, ध्येय वीतरागी भगवान ।
ध्याता तास मुमुक्षु बखान, जे जिनमत तत्वारथ जान ॥३॥
नहि भव्यता म्होटो मान, केवल अभव्य त्रिभुवन अपमान ।
चेतन लक्षण कहिये जीव, रहित चेतन जान अजीव ॥४॥
पर उपकार पुण्य करी जाण, पर पीड़ा ते पाप वखाण ।
आश्रव कर्म आगमन धारे, सवर तास विरोध विचारे ॥५॥
निर्मल हस अश जिहा होय, निर्जरा द्वादश विधि तप जोय ।
कर्म मल बधन दुख रूप, बध अभाव ते मोक्ष अनूप ॥६॥
पर परणति ममतादिक हेय, स्व पर भाव ज्ञान कर ज्ञेय ।
उपादेय आत्मगुण वृद, जाणो भविक महासुख कद ॥७॥
परम बोध मिथ्या दृग रोध, मिथ्या दृग दु ख हेत अबोध ।
आत्म हित चिंता सुविवेक, तास विमुख जड़ता अविवेक ॥८॥
परभव साधक चतुर कहावे, मूरख जेते बन्ध बढावे ।
त्यागी अचल राज पद पावे, जे लोभी ते रक कहावे ॥९॥
उत्तम गुण रागी गुणवन्त, जे नर लहत भवोदधि अन्त ।
जोगी जश ममता नहा रती, मन इन्द्रिय जीते ते जती ॥१०॥
समता रस सागर सो सन्त, तजत मानते पुरुष महत ।
शूर वीर जे कद्रप मारे, कायर काम आणा शिर धारे ॥११॥

अविरक्त नर पशु समान, मानव तस पद आतम ज्ञान।
दिव्य दृष्टि धारी निज देव, करता तास इन्द्रादिक सेव ॥१२॥
माहण ते जे ब्रह्म विद्वान, क्षत्रि कर्म रिपु वश आणे।
वैश्य हानि वृद्धि जे तास, शुद्र भक्ष अभक्ष जे भखे ॥१३॥
अथिर रूप जाणो संसार, थिर एक जिन धर्म हितकार।
इन्द्रि सुख छिल्लर जल जानो, श्रमण अनिन्द्रि अगाध वखानो ॥१४॥
इच्छा रोधन तप मनोहार, जप उत्तम जग में नवकार।
सजम आतम थिरता भाव, भव सागर तरवा की नाव ॥१५॥
छती शक्ति गोपवे ते चोर, शिव साधक ते साध किशोर।
अति दुर्जय मन की गति जोय, अधिक कपट पापी में होय ॥१६॥
नाव साइ पर ग्राह विचार, ऊँच पुरुष पर विकथा निवारे।
उत्तम कनक कीच सम जाणे, हरख शोक हृदये नहि आणे ॥१७॥
अति प्रचंड अग्नि है क्रोध, दुरदम मान मातंग गज जोध।
विष वेली माया जग माहीं, लोभ समो सागर कोई नहीं ॥१८॥
नीच संगति से डरिये भाई, मलिये सदा सवकूं जाई।
साधु संग गुण वृद्धि थाय, पापी की संगते पत जाय ॥१९॥
चपला जेम चंचल नर आयु, खिरत पान जब लागे वायु।
छिल्लर अंजली जल जेम छीन, इस विध जाणिय भव
छहा कीने ॥२०॥
चपला जिम चंचल धन धान, अचल एक जग में प्रभु नाम।
धर्म एक त्रिभुवन में सार, तन, धन, यौवन सकल असार ॥२१॥
नरक द्वार विषय नित जाणो, ते थी राग हिये नवि आणो।
अन्तर राग रहित ते अंध, जानत जहाँ मोह अरुबन्ध ॥२२॥
जे नविसुणत सिद्धांत बखान, बधिर पुरुष जग में ते जान।

अवसर उचित बोलि नवि जाणे, ताकुँ ज्ञानी मूक बखाणे ॥२३॥
सकल जगत जननी है दया, करत सहु प्राणि की मया ।
पालण करत पिता ते कहिये, ते तो धर्म चित्त सद्दहिए ॥२४॥
मोह समान रिपु नहीं कोई, देखो सहु अन्तरगत हो जोई।
सुख में मित्र सकल ससार, दु ख में धर्म एक आधार ॥२५॥
डरत पाप था पडित सोई, हिंसा करत मूढ सो होई ।
सुखिया सन्तोषी जग माही, जाकुँ त्रिविध कामना नाहीं ॥२६॥
जाकुँ तृष्णा अगम अपार, ते म्होटा दुखिया ननुधार ।
धया पुरुष ने विषयातीत, ते जग माहे परम अभीत ॥२७॥
मरण समान भय नहीं कोई, चिंता सम जरा नवि होई ।
प्रबल वेदना क्षुधा वखानो, वक्र तुरग इन्द्रि मन जानो ॥२८॥
कल्पवृक्ष सजम सुखकार, अनुभव चिंतामणी विचार ।
काम गवी वर विद्या जाण, चित्रावेलि भक्ति चित्त आण ॥२९॥
सजम साध्या सवि दु ख जावे, दु ख सहु गया मोक्ष पद पावे।
श्रवण शोभ सुणिये जिनवाणी, निर्मल जिम गगा जल पाणी ॥३०॥
करकी शोभा दान वखाणो, उत्तम भेद पचतस जाणो ।
भुजा बले तरिए ससार, इण विध भुजा शोभ चित धार ॥३१॥

(ब्रह्मविलास) उपदेश-पचीसी

बसत निगोद काल बहु गये, चेतन सावधान नहीं भये ।
दिन दस निकस बहु फिर पड़ना, एते पर एता क्या करना ॥१॥
नत जीव की एक ही काया, उपजन मरन एकत्र कहाया,
ास उसास अठारह मरना, एते० ॥२॥ अक्षर भाग अनतम
ह्यो, चेतन ज्ञान इहा लों रह्यो । कौन शक्ति कर वहा निकरना,

ऐते० ॥३॥ पृथ्वी अप तउ अर वाय, वनसपति मे वसै सुभाय। ऐसी गति म दुख बहु भरना ऐत० ॥४॥ केतो काल इहा तोहि गयो, निकसी फेर विकल त्रय भयो । ताका दु ख कछु जाय न वरना, एत० ॥५॥ पशु पक्षी की काया पाइ, चेतन रहे वहा लपटाइ । विना विवेक कहो क्या करना, ऐते० ॥६॥ इम तिरजच माहीं दुख सहे, सो दु ख किनहु जाहि न कहे । पाप करम ते इह गति परना, एते० ॥७॥ फिरहु परके नरक के माहि, सो दु ख कैसे वरनो जाहिं । जत्र गध तो नाक जु सरना० ऐते० ॥८॥ अग्नि समान भूमि जह कही, कितहु शीत महावन रही । सूरी सज छिनक नहीं टरना० एत० ॥९॥ परम अधर्मि देव कुमारा, छेदन भेदन करहिं अपारा । तिनके त्रसत नाहि उवरना० एत० ॥१०॥ रचक सुख जहा जाव को नाहिं, वसत याहि गति नाहि अवाहि । दसत दुष्ट महाभय डरना० एत० ॥११॥ पुण्य योग भयो सुर अवतारा, फिरत फिरत इह जगत मझारा, आवत काल देख थर हरना० एत० ॥१२॥ सुर मदिर अरु सुख सयोगा, निश दिन सुख सपति क भोगा, छिन इक माहि तहां त टरना० ऐते० ॥१३॥ बहु जन्मातर पुण्य कमाया, तब कहुँ लही मनुप परजाया, तामें लग्यो जरा गद मरना, ए ॥१४॥ धन जोबन सब ही ठकुराइ, कर्म योग त नौ निधि पा, सो स्वप्ना तर वासा वरना, एत० ॥१५॥ निश दिन विषय भोग लपटाना, समुझ नहि कौन गति जाना । है दिन काल आयु को चरना, एते० ॥१६॥ इन विषयन के तो दु ख मानो, तब हुँ तू तेही रसभीनो, नेक विवेक हृदे नहि धरना, एत० ॥१७॥ पर सगति के तो दु ख पावे, तवहु वाको लाज न आवे, नार सग वासन ज्यों जरना, एते० ॥१८॥

द्रव गुरु धर्म ग्रथ न जाने, स्व-पर विवेक हृदे नहिं आने । क्यों इव भव सागर तरना, ऐते० ॥१९॥ पाचों इन्द्रि अति वटमारे, परम धमधन मूसन हारे,त्याहि पियहि ऐसो दुख भरना ऐते०॥२० सिद्ध समान न जाने आपा, ताते तोहि लगत है पापा, खोल देख इट पटहि उघरना, ऐते० ॥ २१ ॥ श्री जिन वचन अमल रस वाना, पीवहि क्यों नहिं मूढ़ अज्ञानी, जाते जन्म जरा मृत हरना,ऐते० ॥२२॥ जो चेते तो है यह दावो,नाहीं बैठे मगल गावो फिर यह वृक्ष नरभव न फरना । ऐत० ॥२३॥ भैया विनवहि वारवारा, चेतन चेत भलो अवतारा, है द्वाह शिव नारी वरना ।

दोहा—ज्ञानमयी दर्शनमयी, चारित्रमयी स्वभाव ।
सो परमातम ध्याइये, यहै सुमोक्ष उपाव ॥ २५ ॥

इन्द्रिय दमन

दोहा—इन्द्रिन की सगति किये, जीव परे जग माँहि । जन्म मरण यहु दुख सहे, कबहु छूट नाहिं॥१॥ भौंरो परा रसनाक के, कमल मुदित भये रैन । केवकी काटन बाँधियो, कबहु न पायो चैन ॥२॥ कानन की सगति किये, मृग मार्यो वन माहि । अहि पकर्यो रस कान के, किमहू छुट्यो नाहि ॥ ३ ॥ आँखनि रूप निहार के, दीप परत है धाय । देखहु प्रगट पतग को, खोवत अपनो काय ॥४॥ रसना वस मछ मारियो, दुर्जन करे विसवास । याते जगत विगुचीयो, सहे नरक दु खवास ॥५॥ फरस हिते गज वश परो, बध्या साकल वाँर । भूख प्यास सब दुख सहे, किहिं विधि कहहिं बखाण ॥६॥ पचेन्द्रिन की प्रीति सों, जीव सहे दुख घोर । काल अनन्त हो जग फिरे, कहूँ न पावे ठोर ॥७॥ मन

राजा कहिये बड़ो, इन्द्रिन को सरदार। आठ पहर प्रेरत रहे, उपने कई विकार॥ ॥ मन इन्द्रि संगति किये, जीव परे जग जोय। विषयन की इच्छा बढ़े, कैसे शिवपुर होय॥ ९॥ इन्द्रिन ते मन मारिये, जोरिये आतम माहि। तोरिये नातो राग सों, फोरिये बलसों थाहि॥ १०॥ इन्द्रिन नह निवारिये, टारिये क्रोध कषाय। धारिये संपति शास्वती, तारिये त्रिभुवन राय॥११॥ गुण अनन्त जामें लसे, केवल दर्शन आदि। केवल ज्ञान विराजतो, चेतन चिन्ह अनादि॥ १२॥ थिरता काल अनादि लो, राजे जिहँ पद माहि। सुख अनन्त स्वामी वहे, दूजो कोउ नाहिं॥१३॥ शक्ति अनन्त विराजती, दोष न जानहि कोय। समकित गुण कर शोभतो, चेतन लखिये सोय॥ १४॥ बधे घटे कबहु नहि, अविनाशी अविकार। भिन्न रहे पर द्रव्य सों, सोच तन निरधार॥१५ पंच वर्ण म जो नहीं, नहीं पंच रस माहि। आठ फरस ते भिन्न है गंध दोउ कोउ नाहिं॥ १६॥ जानत जो गुण द्रव्य के, उपजन बिनसन काल। सो अविनाशी आत्मा, चिन्हु चिन्ह दयाल॥ १७॥

परमात्म पद के दोहे

सकल देव म देव यह, सकल सिद्ध म सिद्ध। सकल साधु म साधु यह, पेख निजातम रिद्ध॥ १॥ फिरे बहुत संसार में, फिर फिर थाके नाहि। फिरे जबहि निज रूप को, फिरे न चहु गति माहि॥ २॥ हरी खाव हों बावरे, हरी वारि मति कौन। हरी भजो आपो तजो, हरी रीती सुख हौन॥ ३॥ परमारथ परम नहि, परमारथ निज भ्यास। परमारथ परिचय बिना, प्राणी

हे उदास ॥४॥ आप पराये वश परे, आपा डाखो खोय । आप आप जाने नहीं आप प्रकट क्यों होय ॥५॥ दिनों दश के कारणे सब सुख डाखो खोय । विकल भयो ससार मे, ताहि मुक्ति क्या होय॥ ॥ निज चन्दा की चादनी, जिही घट मे परकाश। तिहि घट मे ज्योत हो, होय तिमिर को नाश ॥७॥ जित देखत तित चादनी, जब निज नैनन जोत । नैन मिचत पेखे नहीं, कौन चादनी होत ॥८॥ जतन सो दु ख होत है, यहै अचभो मोहिं, ते तन सो ममता धरे, चेतन चेत न तोहि ॥ ९ ॥ जा तन सो तू निज कहे, सो तन तो तुझ नाहिं । ज्ञान प्राण सयुक्त जो, सो तन तो तुझ माहिं ॥ १० ॥ जाकी प्रीत प्रभाव सो, जीत न कबहुँ होय । ताकी महिमा जे धरे, दुरबुद्धि शिव सोय ॥ ११ ॥ अपनी नव निधि छोडके, मागत घर घर भीख । जान बूझ कुए परे, ताहि कहा कहा सीख ॥ १२ ॥ मूढ मगन मिथ्यात्व म, समुझे नाहि निठोल । कानी कोडी कारणे, खोवे रतन अमोल ॥ १३ ॥ कानी कौडी विषय सुख, नर भव रतन अमोल । पुख पुन्य हि कर चढ्यो, भेद न लहे निठोल ॥ १४ ॥ चौरासी लख में फिरे, राग द्वेष परसग । तिन सो प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञान को अग ॥१५॥ चल चेतन तहा जाइये, जहा न राग विरोध । निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतमबोध ॥ १६ ॥ तेरे बाग सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल । ताहि विलोकहु परम तुम, छाडि आल जजाल ॥ १७ ॥ जित देखेहु तित देखिये, पुद्गल ही सो प्रीत । पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ १८ ॥ जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार । चेतन अब किन चेतहु, नर भव लह अतिसार ॥ १९ ॥ दुर्लभ दस दृष्टान्त सो, सो नर भव तुम

पाय। विषय सुखन के कारणे, सर्वस चलो गँवाय ॥ २० ॥ ऐसा मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय। कै छिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ २१ ॥ परमन सो कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान। तान स्वबल सो परम तू, मारो मनमथ जान ॥२२॥ तुमतो पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव। लिप्त भयो गोरस (इंद्रि) विष, ताका कौन उपाव ॥ २३ ॥ अपन रूप स्वरूप सा, जो जिय राखे प्रेम। सो निहचे शिव पद लहे, मनसा वाचा नेम ॥ २४ ॥ ध्यान धरा निज रूप को, ज्ञान माहि उर थान। तुम तो राजा जगत के, चतहु विनवो मान ॥ २५ ॥

अथ ज्ञानपचीसी (श्री बनारसीदासजी कृत)।

सुरनर तार्यग योनि मे, नरक निगोद भवत। महा मोह की नींद सों सोय काल अन त ॥ १ ॥ जैसे ज्वर के जोरसों, भोजन की रुचि जाय। तैसे कुकर्म के उदय, धर्म वचन न सुहाय ॥२॥ लगै भूख ज्वर के गयै, रुचि सों लय आहार। अशुभ गये शुभ के जगे, जाने धर्म विचार ॥ ३ ॥ जैसे पवन झकोरतें, जल में उठै तरंग। त्यो मनसा चचल भई परिग्रह के परसंग ॥ ४ ॥ जहां पवन नहीं सचरै, वहां न जल कलोल। त्यों सब परिग्रह त्याग लों, मनसा होय अडाल ॥ ५ ॥ ज्यों काहू विषधर डसै, रुचि सो नीम चबाय। त्यों तुम ममता सों मढे, मगन विषय सुख पाय ॥ ६ ॥ नीम रस भाव नहीं, निर्विष तन जब होय। मोह घटे ममता मिटै, विषय न वाछै कोय ॥ ७ ॥ जो सछिद्र नौका चढ़े, डूबइ अध अदेख। त्यों तुम भव जल में परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्ध विचार। आतम रुचि नौका

चढ़ै, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥ ज्यों अंकुश माने नहीं, महा मत्तगजराज । त्यौं मन तृष्णा में फिरै, गणै न काज अकाज ॥१०॥ ज्यों नर दाव उपाव कैं, गही आने गज साधि । त्यों या मन वश करन को, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥ [1]तिमिर रोगसों नैन ज्यों, लखै और की और । त्यों तुम संशय में परे, मिथ्यामत को गैर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अंजन किये, तिमिर रोग मिट जाय । त्यौं सद्गुरु उपदेश तें, संशय वेग [2]विलाय ॥ १३ ॥ जैसे सब यादव जरे, द्वारावती की आग । त्यों माया में तुम परे, कहा जाहुगे भाग ॥ १४ ॥ दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निर्ग्रंथ । तज माया समता गहो, यही मुक्ति को पंथ ॥ १५ ॥ ज्यों कुधातु के फंद सों, घट बंध कंचन कांति । पाप पुण्यकरी त्यों भये, मूढातम बहु भांति ॥ १६ ॥ कंचन निज गुण नहिं तजै, [3]वान हीन के होत । घट घट अंतर आतमा, सहज स्वभाव उद्योत ॥ १७ ॥ पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय । त्यों प्रगटे परमातमा, पुण्य पाप मल खोय ॥ १८ ॥ पर्व राहु के ग्रहण सों, [4]सूर [5]सोम [6]छवि छीन । संगति पाय कुसाधु की, सज्जन होय मलीन ॥१९॥ निंबादिक चन्दन करै, मलियाचल की वास । दुर्जन तें सज्जन भये, रह सुसाधु के पास ॥ २० ॥ जेसे [7]ताल सदा भरे, नल आवे बहु ओर । तैसे आस्रव द्वारसों, कर्म बंध को जोर ॥ २१ ॥ ज्यों जल आवत [8]मूंदिये, सूकै सरवर पानी । तैसे संवर के किये, कर्म

1-तिमिर = आंख में अंधेरी आना । 2-विलाय = नाश होवे ।
3-वान = वर्ण । 4-सूर = सूरज । 5-सोम = चन्द्र । 6-छवी = प्रकाश । 7-ताल = तलाव । 8-मूंदीये = बन्ध करे । रोके ।

निर्जरा जाना ॥ २२ ॥ ज्यों बूटी संयोग तैं, पारा मूर्छित होय ॥ त्यों पुद्गल सा तुम मिले, आतम सकती खोय ॥ २३ ॥ मेल खटाइ माजिये, पारा परगट रूप । शुक्ल ध्यान अभ्यास तें, दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥ कही उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेतु, आप बुझावत आपको, उदय करन के हेतु ॥ २५ ॥

इति श्री ज्ञानपचीसी सम्पूर्णम् ॥

पंच परमेष्ठि की स्तुति तथा ध्यानादि श्री द्रव्य संग्रह छंद

चौपाई

चार घातिया कर्म निवारी । ग्यान दरस सुख बल परकास ॥
परमौदारिक तनु गुणवंत । ध्याऊँ शुद्ध सदा अरहंत ॥१॥
करम बाथ नासें सब थोक । देखैं जानैं लोकालोक ॥
लोक शिखर थिर पुरुषाकार । ध्याऊँ सिद्ध सुखी अविकार ॥२॥
दरशन ग्यान प्रधान विचार । व्रत तप वीरज पंचाचार ॥
धरें धरावैं और निपास । ध्याऊँ आचारज सुख रास ॥३॥
सम्यक् रत्न त्रय गुण लीन । सदा धरम उपदेश प्रवीन ॥
साधुनी में मुख करुनाधार । ध्याऊँ उपाध्याय हितकार ॥४॥
दर्शन ज्ञान सुगुण भंडार । परम मुनिवर मुद्राधार ॥
साधे शिव मारग आचार । ध्याऊँ साधु सुगुण दातार ॥५॥
तन चेष्टा तजा आसन माडी । मौनधारी चिंता सब छांडी ॥
थीर है मगन आप म आप । यह उत्कृष्ट ध्यान निहपाप ॥६॥
जब लौं मुगति चहै मुनिराज । तब लौं नहीं पावे शिवराज ॥
सब चिंता तज एक स्वरूप । सोइ निहचै ध्यान अनूप ॥७॥

(दोहा—खाना चलना सोवना, मिलना वचन विलास ।
ज्यों ज्यों पच घटाइये, त्यों त्यों ध्यान प्रकाश ॥ ८ ॥

चौपाई

रत्न त्रय जियमाहीं । निन तजी और दर्व में नाहीं ॥
तीनों में निष्पाप । शिव कारण यह चेतन आप ॥९॥

(दोहा) आप आप में आपको, देखै दरशन जोय ।
जान पना सो ज्ञान है, थिरता चारित्रसोय ॥१०॥
अशुभ भाव निवार के, शुभ उपयोग विसतार ।
सुमिति गुपति व्रत भेदसों, सो चारित व्यवहार ॥११॥

चौपाई

बाहिर परिणति चचल जोग । अन्तर भाव समल उपयोग ॥
इनों किये बढै ससार । रोकैं निहचै चारित सार ॥१२॥
चारित निहचै अरु व्यवहार । उभय मुक्ति कारन निरधार ॥
दोनों ध्यान तैं दोनों रास । कीनै ध्यान उतन अभ्यास ॥१३॥

राग निवारण अग

अरे जीव भव घन विषै, तेरा कौन सहाय ।
जिनके कारण पचि रह्या, तेतो तरे नाय ॥१॥
ससारी को देखिले, सुखी न एक लगार ।
अब तो पीछा छोड़िदे, मत धर सिर पे भार ॥२॥
झूठे जग के कारणे, तू मत कर्म बँधाय ।
तू तो रीता ही रहै, धन पैला ही खाय ॥३॥

तन, धन संपति पाय के, मगन न हो मन माय ।
कैसे सुखिया होयगा, सोवे लाय लगाय ॥४॥
ठाठ देख भूले मति, ए पुद्गल पर याय ।
देखत देखत थाहरै, जासी थिर न रहाय ॥५॥
लूटगें ज्ञानादि धन, ठग सम यह संसार ।
माठे वचन उचारि के, मोहफाँसी गल डार ॥६॥
मोह भूत तोकों लग्यो, करे न तनक विचार ।
ना मान तो परखिले, मतलब को संसार ॥७॥
काया ऊपर थाहरे, सब सू अधिकी प्रीत ।
या तो पहल सजन म, देगा दगो नचीत ॥८॥
विषय दुखन को सुख गिनै, कहूँ कहाँ लगि भूल ।
आँख छता अँधा हुआ, जाणपणा में धूल ॥९॥
नित प्रति दीखत ही रह, उदै अस्त गति भान ।
अजहुँ न ज्ञान भयो कछु, तू तो बडो अजाण ॥१०॥
किसके रहे निश्चित तू, सिर पर फिरे जु काल ।
बाधे है तो बाध ल, पानी पहिले पाल ॥११॥
आया सो सब ही गया, अवतारादि विशेष ।
तू भी या ही जायगा, इण में मीन न मेख ॥१२॥
यो अवसर फिर ना मिलै, अपनो मतलब सार ।
चुकते दाम चुकाय दे, अब मत राख उधार ॥१३॥
कैसे गाफिल हो रहा, निबड़ा आत करार ।
निपजी खती देख क्यां, बाटी सटे गँवार ॥१४॥
धर्म निहार कियो नहीं, कीनो विषय बिहार ।
गाठ न्याय रात चले, आके जग हटवार ॥१५॥

काज करत पर घरन के, अपना काज बिगार । '
सीत निवारे जगत की, अपनी झुपरी बार ॥१६॥
नहिं विचार तैंने किया, करना था क्या काज ।
उदै होयगा कर्म फल, तब उपजेगी लाज ॥१७॥
झूठे ससारीन की, छूटेगी जब लाज ।
इनसों अलगा होयगा, तब सुधरेगा काज ॥१८॥
अपनी पूँजी सू करो, निश्चल कार विहार ।
बाध्या सो ही भोग ले, मति कर और उधार ॥१९॥
नया कर्म ऋण काढि के, करसी कार विहार ।
देखा पडसी पार का, किम होसी छुटकार ॥२०॥
विषय भाग किंपाक सम, लखि दुख फल परिणाम ।
जब विरक्त तू होयगा, तब सुधरेगा काम ॥२१॥
येरे मन मेरे पथिक, तू न जाव वहँ ठोर ।
बटमारा पाँचू जहाँ, करैं साहु कू चोर ॥२२॥
आरभ विषय कषाय कू, कीनी बहुत दि बार ।
कछु कारज सरिया नहीं, उलटा हुआ खुवार ॥२३॥
चारूँ सँघ. मे सदा, सुनै निपुन चित लाग ।
गुरु समझावे कठिन सूँ, उपजै तउ न विराग ॥२४॥
दौर हुआ जो कुछ हुआ, अब करनो नहिं जोग ।
बिना विचारे तैं किया, ताको ही फल भोग ॥२५॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके मन यह सुख पावे।
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे,
पर्वत नदी श्मशान-भयानक अटवी से नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग अनिष्टयोगमें, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥९॥
ईति भीति व्यापे नहिं जग मे, वृष्टिसमय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत मे, फैल सर्व हित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें ॥११॥

व्याख्यान के प्रारम्भ की स्तुति

वार हिमाचल मे निकसी, गुरु गौतम के श्रुत कुण्ड ढरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जगकी जडता सब दूर करी है ॥ १ ॥
ज्ञान पयोदधि माँथ रली, बहु भग तरगन सें उछरी है ।
वा सूचा सारद गङ्गनदी, प्रणमी अजली निज सीस धरी है ॥ २ ॥
ज्ञानसु नार भरी सलिला, सुरधेनु प्रमोद सुखीर निध्याना ।
कर्म जो व्याधी हरन्त सुधा, अघमेल हरन्त शीवा कर मानी ॥ ३ ॥
जैन सिद्धान्त की ज्यानि नदा, सुरदेव स्वरूप महा सुखदानी ।
लोक अलोक प्रकाश भयो, मुनिराज बखानत है निज वानी ॥ ४ ॥
सामित देव विषे मघवा, अरु वृन्द विषे शशी मगलकारी ।
भूप समूह विषे वली चक्र, प्रति प्रगटे वल केशव भारी ॥ ५ ॥
नागान म धरणी द्र बडो, अरु है असुरीन म चवन्द्र अवतारी ।
ज्युँ जिन शासन सघ विषे, मुनिराज दाये श्रुत ज्ञान भण्डारी ॥ ६ ॥

केसे कर केतकी कणर एक कहियो जाय, आक दूध गाय दूध अन्तर घणेरो है ।
रिरी होत पीली पिण होस करे कचन की कहाँ काग वानी कहाँ कोयल का टेरा है ।
कहाँ भानु तेज भयो आगिया विचारो कहाँ,
पूनमका उजवाले कहाँ अमावस अँधेरो है ।
पक्ष छोड पारखी निहाल दृष्ट मिलाकर, जैन वैन और वैन अंतर घणेरो है ॥
वीतराग वानी साची मोक्ष की निशानी जानी,
महा सुकृत की खानी ज्ञानी आप मुख बखाणी है ।
इनका आराधके तिरिया है अनन्त जाव साही निहाल जाण सरवा मन आणी है ॥
सरधा है सार पार सरधासे खेवा पार, सरधा बिन जीव खुवार निश्चय कर मानी है
वाणी तो घणारी पण वीतराग तुल्ये नहि, इनक सिवाय और छोरा सी कहानी है

सफल-जीवन।

(ले० प० दरबारीलालजी न्यायतीर्थ)

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन की पहिली गाथा का भावार्थ

एक तरह से जीवन मिलना महँगा नहीं है। प्राणी को मरन के बाद बिना किसी टके पैसे के जीवन मिल ही जाता है। इस प्रकार का जीवन जितना सस्ता है सफल-जीवन उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक महँगा है। लाखों मनुष्यों में, कोई ही अपने जीवन को सफल बना पाता है। जीवन मिलना सरल है परन्तु जीवन की सफलता के साधन मिलना मुश्किल है। उत्तराध्ययन में चार बातें दुलभ बतलाई गई हैं जो कि जीवन की सफलता के लिये आवश्यक कही जा सकती हैं।

चत्तारि परमगाणि, दुल्लहाणीह जतुणो।
माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मिय वीरय।

प्राणी को चार कारणों का मिलना बहुत मुश्किल है। मनुष्यत्व, शास्त्रज्ञान, श्रद्धा और सयम पालन करने की शक्ति।

मनुष्यपर्याय के विषय में जब हम विचार करते हैं तब इसकी दुर्लभता को देखकर हमें चकित होजाना पड़ता है। दुनियाँभर मनुष्यों के सिवाय ससार में अनन्त जीवराशि पड़ी हुई है। आज वैज्ञानिक लोग भी इस बात को मानते हैं कि पानी की जरासी बूद में भी करोड़ों जीव पाये जाते हैं। इन जीव पर्यायों को छोड़ कर कीड़े मकोड़े पशुपक्षी आदि के शरीरों से बचकर मनुष्य होजाना कितना मुश्किल है।

लेकिन यहां पर सिर्फ मनुष्यपर्याय की ही दुर्लभता नहीं

बतलाई गई है। किन्तु मनुष्यत्व की दुर्लभता बतलाई गई है। मनुष्यभव पाजाना एक बात है और मनुष्यत्व प्राप्त करलेना दूसरी बात है। आज दुई दुनिया में मनुष्य तो करीब १॥ अर्ब हैं परतु मनुष्यत्ववाले मनुष्यों की गिनती अगर की जाय तो वह अगुलियों पर की जा सकेगी। इसीलिये शास्त्र में मनुष्यभव की दुलभता की अपेक्षा मनुष्यत्व की दुलभता का कथन किया है। यह बात बड़े मार्के की है।

सच है, मनुष्यभव पाजाने पर भी अगर मनुष्यत्व प्राप्त न किया तो मनुष्यजीवन किस काम का? परतु यहा पर प्रश्न यह है कि मनुष्यत्व आखिर है क्या? जिसे न पाने पर मनुष्यजन्म ही व्यर्थ माना जाता है।

मनुष्यभव मिलने पर मनुष्य का आकार मिलता है परतु मनुष्यत्व के लिये आकार की नहीं किन्तु गुणों की आवश्यकता है। एक कवि का कहना है कि जब तक गुणियों के भीतर मनुष्य की गणना न हो तब तक उसकी माता पुत्रवती ही नहीं है।

'गुणिगणगणनारंभे न पतति कठिनी सुसभ्रमायस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ॥ १ ॥

अर्थात् गुणी लोगों की गिनती करते समय जिसके नाम पर अगुली न रक्खी गई अर्थात् जिसका नाम न लिया गया उस पुत्र से अगर कोई माता पुत्रवती कहलावे तो कहिये वन्ध्या किसे कहेंगे?।

इससे साफ मालूम होता है कि श्रेष्ठ गुणों को धारण करनेवाला ही मनुष्य है। बाकी तो मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्याकार प्राणी हैं।

मनुष्य शब्द का एक अर्थ यह भी किया जाता है कि मनु की सतान है वह मनुष्य है। यद्यपि मनु की सतान सभी हैं लेकिन मनु की सतान होने का गौरव धारण करने वाले थोड़े हैं। सच्ची सतान तो वही है जो अपने पूर्व पुरुषों का गौरव धारण कर सके। मनु उन्हें कहते हैं जो युग निर्माण करते हैं। अर्थात् समाज की गिरी हुई हालत को उठा कर युगान्तर उपस्थित कर देते हैं। जैन शास्त्रों में मनुओं का (कुलकरों का) जो उल्लेख मिलता है उस से साफ मालूम होता है कि उनने युग (कर्मभूमि) की आदि में समाज की आवश्यकता को पूर्ण किया था। आज भी जो मनुष्य, समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करता है समाज में युगान्तर उपस्थित करता है वह मनुष्य है, वही मनु की सच्ची सन्तान है।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में इतनी शक्ति या योग्यता नहीं हो सकती। फिर भी प्रत्येक मनुष्य मनु की सतान होने के गौरव की रक्षा कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही मनुष्य युगान्तर उपस्थित कर दे। इमारत सरीखे साधारण कार्य को भी एक ही कारीगर नहीं बना पाता फिर युगान्तर उपस्थित करना तो बड़ी बात है। हां! इतना हो सकता है कि हम उसके लिये कुछ भी कर गुजरें। अगर हम एक ईंट भी जमा सके तो भी कार्यकर्ता कहलायेंगे। मनु का कार्य कर सकेंगे। यही तो मनुष्यत्व है।

एक दूसरा कवि मनुष्यत्व का विवेचन इन शब्दों में करता है—

आहारनिद्राभयमैथुनं च। सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्॥
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो। धर्मेण हीना पशुभि समाना॥

अर्थात् आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चारों बातों में तो मनुष्य पशु के समान ही है। मनुष्य में अगर कोई विशेषता है तो धर्म की है। जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है।

मतलब यह है कि इस कवि ने मनुष्यत्व का चिह्न रक्खा है धर्म जो मनुष्य धर्म को धारण कर सका वही सच्चा मनुष्य है। धर्म का विषय बहुत गहरा और विस्तीर्ण है। उसके ऊपर तो कई स्वतंत्र लेख लिखे जा सकते हैं इसलिये धर्म के विषय में हम यहां अधिक कुछ न कहेंगे। परन्तु इतना तो कहना ही पड़ेगा कि धर्म का मूल सचाई है। 'सचाई' का संस्कृत पर्यायवाची शब्द है 'सम्यक्त्व'। सम्यक्त्व से ही मनुष्यत्व है और मिथ्यात्व से ही पशुत्व है, एक कवि ने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की महिमा को थोड़े में ही बता दिया है—

> नरत्वेऽपि पशूयन्ते मिथ्यात्वग्रस्तचेतसः ।
> पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्तचेतनाः ॥

अर्थात् जिनका चित्त मिथ्यात्व से दूषित होगया है वे मनुष्य होकर भी पशु हैं और जिनका आत्मा सम्यक्त्व से निर्मल होगया है वे पशु होकर भी मनुष्य हैं। इससे साफ़ मालूम होता है कि मनुष्यत्व का ठेका सिर्फ मनुष्यों को ही प्राप्त नहीं है। और मनुष्य होने से ही मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो जाता। पशुओं में भी ऐसे पशु होते हैं जिन्हें हम मनुष्य कह सकते हैं। और मनुष्यों में भी ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें हम पशु कह सकते हैं इससे मालूम होता है कि मनुष्य होने पर भी मनुष्यत्व मिलना मुश्किल है। इसीलिये उत्तराध्ययन की गाथा

म चार दुर्लभा मे सबसे पहिली दुर्लभ वस्तु मनुष्यत्व बतलाई गई है, वहां पर मनुष्यभव न लिखकर जो मनुष्यत्व लिखा गया है उसने अर्थ को बहुत गम्भीर बना दिया है। सफल जीवन बनाने के लिये यह सबसे पहिली शर्त है।

जो इस पहिली शर्त को पूर्ण कर सका वह आगे की तीन शर्तों को भी पूर्ण कर सकेगा। सच पूछा जाय तो आगे की तीन शर्तें, मनुष्यत्व के ही पूर्ण विकाश के लिये हैं।

दूसरी शर्त है शास्त्रज्ञान। यों तो शास्त्रज्ञान होना सरल है। दश पांच वर्ष रगड़ते रगड़ते सभी विद्वान् बन जाते हैं। बात बात में धर्म २ चिल्लाना आता है। परन्तु सच्चा शास्त्रज्ञान, धर्म के रहस्यों के पहिचानने की योग्यता मुश्किल है। जैनशास्त्र के ज्ञानका सार इतना ही है कि "धर्म आत्मा में है बाहर नहीं"। धर्म न तो मन्दिरों में है न मसजिदों में, न तीर्थों में, न पोथियों में, वह तो अपनी आत्मा में है। लोगों ने धर्म का आधार शरीर मान लिया है। जाति और कुल को धर्म का ठेकेदार बना दिया है। वे हाड़ मांस के शरीरों में भी छूत अछूत का विचार करते हैं यही तो मिथ्याज्ञान है। सैकड़ों पोथों को निगल जाने पर भी जिसने अपनी आत्मा की शक्ति को न पहचाना, शरीर की शुद्धि अशुद्धि के पीछे ही पड़ा रहा वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो तो भी सम्यग्ज्ञानी नहीं कहा जा सकता।

जैनशास्त्रों में सब से बड़ी विशेषता यही है कि वह बाहिरी क्रियाकांडों में धर्म का अस्तित्व नहीं मानता, जिसने इतनी बात समझ ली उसने समस्त शास्त्रों का सार पालिया। शास्त्र

पढ़कर जो इस रहस्य को समझ सकते हैं उन्हें 'श्रुति' दुर्लभ नहीं है। किन्तु जो लोग शास्त्रों का बोझा ढोकर कभी उसके रहस्य का नहीं समझते उन्हें 'श्रुति' दुर्लभ है। अगर शास्त्रों के पढ़ने से ही 'श्रुति' सुलभ होजाती तो उत्तराध्ययन सूत्र में चार दुर्लभों में 'श्रुति' दुलभ न बताई जाती।

तीसरी दुलभ वस्तु है 'श्रद्धा', यों तो श्रद्धा का राज्य सारे संसार में है। श्रद्धा के मारे दुनिया परेशान है और 'सत्य' मारा मारा फिरता है। लेकिन सच पूछा जाय तो यह श्रद्धा का फल नहीं है। श्रद्धा तो दिव्य गुण है। संसार में यह अन्धेर मचाया है अन्धश्रद्धा ने। अन्धश्रद्धा के फन्दे में पड़कर मनुष्य, विवेकशून्य बन गया है। उसने मनुष्यत्व को भुला दिया है। वह अत्यन्त संकुचित बन गया है। यह अन्धश्रद्धा सुलभ है। लेकिन श्रद्धा दुर्लभ है। वह सम्यग्ज्ञानपूर्वक होती है। वह प्रत्यक्ष अनुमान के विरुद्ध नहीं है। श्रद्धा शब्द का वास्तविक अर्थ है आत्मविश्वास। आत्मा अनन्त शक्तिशाली है। वह अनन्त कर्म वर्गणाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के विश्वास से जो कर्मक्षेत्र में कूद पड़ते हैं। अनन्त बाधाएं और अनन्त विघ्न जिनके विश्वास को हटा नहीं सकते वही सच्चे श्रद्धालु हैं। जो कुल जाति आदि की पर्वाह न करके कहते हैं—

"दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥

'कुल में जन्म मिलना दैव के आधीन है, लेकिन पुरुषार्थ तो मेरे आधीन है" वे ही श्रद्धालु हैं। जैन धर्म यह नहीं कहता कि तुमको शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है। मुनि बनने का अधिकार नहीं है। यह अधिकारों का,

कता नहीं देता। बल्कि कहता है कि, आत्मा को पहिचानो और जो कुछ कर सकते हो, करो। वह स्वप्न में भी नहीं विचारता कि मुझे इस बात का अधिकार है या नहीं। तुच्छ से तुच्छ, नीच से नीच प्राणी को धर्म पालन करने का अनन्त अधिकार है। जो उस अनन्त अधिकारों और आत्मा की अनन्त शक्ति में विश्वास रखता है वही सच्चा श्रद्धालु है।

चौथी दुर्लभ वस्तु है संयमशक्ति। संसार में यह पदार्थ सबसे अधिक दुर्लभ है। परन्तु जितना ही अधिक दुर्लभ है लोगों ने इसे उतना ही अधिक खिलवाड़ की वस्तु बना रक्खा है। जिन लोगों में मनुष्यत्व नहीं, ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं वे संयमी बनने की डींग हाँकते हैं। संयम की जैसी मिट्टी पलीद हुई है वैसी किसी की नहीं हुई है।

संयम के गौण साधनों को संयम समझना सब से बड़ी भूल है। उपवास, रसत्याग, अनेक तरह के वेष, स्त्री पुरुषों का त्याग आदि संयम के साधन हो सकते हैं परन्तु ये स्वयं संयम नहीं हैं। फिर संयम क्या है और संयमी कौन है?

संयम है मन को वश में रखना। कषायों को दूर रखना। जो मनुष्य हमारा बड़ा से बड़ा अनिष्ट कर रहा हो उस पर भी जिसे क्रोध नहीं आता, जिसे अपनी विद्वत्ता तथा ऋद्धि का घमण्ड नहीं है, जो अपनी पूज्यता का भी घमण्ड नहीं करता, जो यश का भिखारी नहीं है, जिसके हृदय में ईर्षा नहीं है, जो दूसरे के यश को सह सकता है, जो फूट-का शत्रु हो, विश्वप्रेम ही जिसकी रागवृत्ति है, जो छल कपट से दूर है, जिसने बड़ी से बड़ी ऋद्धि को मिट्टी के समान समझा है, जो

उदारता का भंडार है, पापियों को देखकर जो घृणा न करके दया करता है, विरोधी के साथ भी जो मित्र जैसा बर्ताव करता है। जो सहनशीलता का घर है, वही संयमी है, वही साधु है। वही जगत् के लिये प्रातःस्मरणीय है। परंतु ऐसा संयम मिलना मुश्किल है। तपस्या का भेष धारण करने वाले (साधु) भारत में करीब ६० लाख व्यक्ति हैं उनमें ऐसे कितने हैं जिनकी कषायें पानी में खींची गई लकीर के समान शीघ्र ही विलीन होजाती हों। जिनमें सच्चा त्याग और सच्ची उदासीनता हो? ऐसे व्यक्ति अंगुलियों पर नहीं तो अंगुलियों के पोरों पर ज़रूर गिने जा सकते हैं इसीलिये उत्तराध्ययन में संयम को दुर्लभ कहा है।

इन चार दुर्लभ वस्तुओं को जो पा सका है उसीका जीवन सफल है।*

(जैनप्रकाश)

---

* इस लेख के संग्रह करने के लिये जैन प्रकाश व पंडितजी ने सहर्ष अनुमति दी है, जिसके लिये हम आपका उपकार मानते हैं।

—व्यवस्थापक

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

स्थापना सन् १९२५ ई०, मूलधन ४५०००)

उद्देश—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बधी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातन्त्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें उन्हें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, यह कार्यालय से सूचना मिल जायगी।

सस्ती साहित्य माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह—प्रथम भाग (महात्मा गांधी) पृष्ठ स० २७२, मूल्य स्थायी ग्राहकों से ।≤) सर्वसाधारण से ॥)

(२) शिवाजी की योग्यता—(ले० गोपाल दामोदर तामस्कर एम ए० एल० टी०) पृष्ठ ११२ मूल्य ।=) ग्राहकों से ।)

(३) दिव्य जीवन—पुस्तक दिव्य विचारों की खान है। पृष्ठ-संख्या १३६, मूल्य ।=) ग्राहकों से ।) चौथी बार छपी है।

(४) भारत के स्त्री रत्न—(पाँच भाग) इस में वैदिक काल से लगाकर आज तक की प्रायः सब धर्मों की आदर्श, पतिव्रता, विदुषी और भक्त करीब ५०० स्त्रियों की जीवनी होगी। प्रथम भाग पृष्ठ ३१० मू० १) ग्राहकों से ॥।) दूसरा भाग दूसरे वर्ष में छपा है। पृष्ठ ३२० मू० ॥|=)

(५) व्यावहारिक सभ्यता—छोटे बड़े सब के उपयोगी व्यावहारिक शिक्षाएँ। पृष्ठ १२८, मूल्य ।)॥ ग्राहकों से ≈)॥

(६) आत्मोपदेश—पृष्ठ १०२, मू० ।) ग्राहकों से ≈)

(७) क्या करें? (टाल्सटाय) महात्मा गांधी जी लिखते हैं—"इस पुस्तक ने मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप डाली है। विश्वप्रेम मनुष्य को कहाँ तक ले जा सकता है, यह मैं अधिकाधिक समझने लगा" प्रथम भाग पृष्ठ २११ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)

(८) कलवार की करतूत—(नाटक) (ले० टाल्सटाय) अर्थात् शराबखोरी के दुष्परिणाम; पृष्ठ ४० मू० ~)॥ ग्राहकों से ~)।

(९) जीवन साहित्य—(मू० ले बाबू राजेन्द्रप्रसादजी) काका कालेलकर के धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर मार्मिक और मननीय लेख—प्रथम भाग पृष्ठ २१८ मू० ।।) ग्राहकों से ।=)

प्रथम वर्ष में उपरोक्त नौ पुस्तकें १६६८ पृष्ठों की निकली हैं

सस्ती-साहित्य माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) तामिल वेद—[ले० अद्भुत संत ऋषि तिरुवल्लुवर] धर्म और नीति पर अमृतमय उपदेश—पृष्ठ २४८ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≤)॥

(२) स्त्री और पुरुष [म० टाल्सटाय] स्त्री और ... के पार स्परिक सम्बन्ध पर आदर्श विचार—पृष्ठ १५४

(३) हाथ की कताई बुनाई [अनु० श्री रामदास गौड़ एम० ए०) पृ० ११७ मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥ इस विषय पर आई हुईं ६६ पुस्तकों मेंसे इसको पसंद कर म० गांधीजी ने इसके लेखकों को १०००) दिया है।

(४) हमारे जमाने की गुलामी (टाल्सटाय) पृष्ठ १०० मू० ।)

(५) चीन की आवाज़—पृष्ठ १२० मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(६) द० अफ्रिका का सत्याग्रह—(दूसरा भाग) ले० म० गांधी पृ० ११८ मू० ॥) ग्राहकों से ।=) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(७) भारत के स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ लगभग ३२० मू० ॥।-) ग्राहकों से ॥≡) प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(८) जीवन साहित्य [दूसरा भाग] पृष्ठ २०० मू० ॥) ग्राहकों से ।≡) इसका पहला भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

दूसरे वर्ष मे लगभग १६८० पृष्ठों की ये ८ पुस्तकें निकली हैं

सस्ती प्रकीर्ण-माला के प्रथम वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५२, मू० ।=) ग्राहकों से ।)

(२) सीताजी की अग्नि परीक्षा—पृष्ठ १२४ मू० ।-) ग्राहकों से ≡)॥

(३) कन्या शिक्षा—पृष्ठ स० ९४, मू० केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ≡)

(४) यथार्थ आदर्श जीवन—पृष्ठ २६४ मू० ॥-) ग्राहकों से ।=)॥

(५) स्वाधीनता के सिद्धान्त—पृष्ठ २०८ मू० ॥) ग्राहकों से ।-)॥

(६) तरंगित हृदय—(ले० प० देवशर्म्मा विद्यालंकार) मू० ले० प० पद्मसिंहजी शर्मा पृष्ठ १७६, मू० ।≡) ग्राहकों से ।-)

(७) गंगा गोविन्दसिंह (ले० चण्डीचरणसेन) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों और उनके कारिन्दों की काली करतूतें और देश की विनाशोन्मुख स्वाधीनता को बचाने के लिए लड़ने वाली आत्माओं की वीर गाथाओं का उपन्यास के रूप में वर्णन—पृष्ठ २८० मू० ॥=) ग्राहकों से ।≡)॥

(८) स्वामीजी [श्रद्धानंदजी] का बलिदान और हमारा कर्तव्य [ले० प० हरिभाऊ उपाध्याय] पृष्ठ १२८ मू० ।-) ग्राहकों से ।)

(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास [प्रथम भाग] यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का तथा जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है। प्रत्येक भारत वासी को यह ग्रन्थ रत्न पढ़ना चाहिये। पृष्ठ ३६६ मू० ॥=) ग्राहकों से ॥-)

प्रथम वर्ष में १७०२ पृष्ठों की ये ९ पुस्तकें निकली

आदर्श जैन

[श्री० वा० मो० शाह]

"जन" वह साधारण मनुष्य ।
ने मात्रा वढ़ा हुआ वह "जैन" ।
ज्ञान और क्रिया की दो मात्रा (पाँखें) ।
दो पाँखों से ऊँचा चढ़कर,
जगत का निरीक्षण करे वह जैन ।
जीतने की अभिलाषा वाला वह जैन ।
विजय लक्ष्मी से वरा हुआ वह जैन ।
भूमण्डल की विभूति जैन महासागर को वरती है ।
त्रिलोक को नापे सो जैन ।
निज के दोषों को जीते सो जैन ।
जगत् मात्र का भला चाहा करे वह जैन ।
जैन के हृदय मे, कार्य्य मे क्रोध की वासना न हो ।
शान्ति की तरगे उछलती रहे ।
जैनो मेरा, यह सत्य नहीं, परन्तु सत्य सो मेरा ।
जैन कभी कायर नहीं होता ।
शूर वीरता और धीरता धारे सो जैन ।
विलास को विप माने सो जैन ।
उत्साह में ऊँचा उछले सो जैन ।
जगत् मात्र को अपना माने सो जैन ।
शरीर और आत्मा को भिन्न समझे सो जैन ।
जगत् को नाचता देखे सो जैन ।
सर्वथा स्वतन्त्र हो सो जैन ।
शरीर और मन पर राज्य करे सो जैन ।
जगत् जिसके वशीभूत होवे वह जैन ।

सस्ती-प्रकीर्ण माला के द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) यूरोप का इतिहास [दूसरा भाग] पृष्ठ २२७ मू० ॥~) ग्राहकों से ।=) (२) यूरोप का इतिहास [तीसरा भाग] पृष्ठ २४० मू० ॥~) ग्राहकों से ।=) इसका प्रथम भाग पहले वर्ष में निकल चुका है।

(३) ब्रह्मचर्य विज्ञान [पं० प० जगन्नारायणदेव शर्मा, साहित्य शास्त्री] ब्रह्मचर्य विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक—भू० ले० प० लक्ष्मणनारायण गर्दे—पृष्ठ ३७४ मू० ।॥~) ग्राहकों से ॥~)॥

(४) गोरों का प्रभुत्व [बाबू रामचन्द्र वर्म्मा] संसार में गोरों के प्रभुत्व का अंतिम घंटा बज चुका। एशियाई जातियां किस तरह आगे बढ़ कर राजनैतिक प्रभुत्व प्राप्त कर रही हैं यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। पृष्ठ २७४ मू० ।॥=) ग्राहकों से ॥=)

(५) अनाथा—फ्रांस के सब श्रेष्ठ उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो के "The Laughing man" का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक हैं ठा० लक्ष्मणसिंह बी० ए० एल० एल० बी० पृष्ठ ४७४ मू० १।=) ग्राहकों से १)

द्वितीय वर्ष में १५६० पृष्ठों की ये ५ पुस्तकें निकली हैं

राष्ट्र निर्माण माला (सस्ती साहित्य-माला) [तीसरा वर्ष]

(१) आत्म-कथा (प्रथम खंड) म० गांधी जी लिखित अनु० पं० हरिभाऊ उपाध्याय। पृष्ठ ४१६ स्वाद ग्राहकों से मूल्य केवल ॥=)

(२) श्री राम चरित्र (ले० श्री चिंतामण विनायक वैद्य एम० ए०) पृष्ठ ४४० मूल्य १।) ग्राहकों से ॥ऽ) आप ग्रंथ सन् २८ के अंत तक प्रकाशित हो जावेंगे। समाज विज्ञान छप रहा है

राष्ट्र-जागृतिमाला (सस्ती प्रकीर्ण-माला) [तीसरा वर्ष]

(१) सामाजिक कुरीतियां [टाल्सटाय] पृष्ठ २८० मूल्य ॥ऽ) ग्राहकों से ॥) (२) घरों की सफाई—पृष्ठ ६२ मूल्य ।) ग्राहकों से ऽ) (३) आश्रम-हरिणी (वामनमल्हार जोशी एम० ए० का सामाजिक उपन्यास) पृष्ठ ९२ मूल्य ।) ग्राहकों से ऽ) (४) शैतान की लकड़ी (अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार) १० चित्र—पृष्ठ १६८ मूल्य ।॥=) ग्राहकों से ॥=) आगे के ग्रंथ छप रहे हैं।

विशेष हाल जानने के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।

पता—सस्ता साहित्य-मण्डल, अजमेर

आदर्श जैन

[श्री० वा० मो० शाह]

"जन" वह साधारण मनुष्य।
दो मात्रा चढ़ा हुआ वह "जैन"।
ज्ञान और क्रिया की दो मात्रा (पाँखे)।
दो पाँखो से ऊँचा चढ़कर,
जगत का निरीक्षण करे वह जैन।
जीतने की अभिलाषा वाला वह जैन।
विजय लक्ष्मी से वरा हुआ वह जैन।
भूमण्डल की विभूति जैन महासागर को वरती है।
त्रिलोक को नापे सो जैन।
निज के दोषों को जीते सो जैन।
जगत् मात्र का भला चाहा करे वह जैन।
जैन के हृदय मे, कार्य्य मे क्रोध की वासना न हो।
शान्ति की तरगे उछलती रहे।
जैनी मेरा, यह सत्य नहीं, परन्तु सत्य सो मेरा।
जैन कभी कायर नहीं होता।
शूर वीरता और धीरता धारे सो जैन।
विलास को विष माने सो जैन।
उत्साह में ऊँचा उछले सो जैन।
जगत् मात्र को अपना माने सो जैन।
शरीर और आत्मा को भिन्न समझे सो जैन।
जगत् को नाचता देखे सो जैन।
सर्वथा स्वतन्त्र हो सो जैन।
शरीर और मन पर राज्य करे सो जैन।
जगत् जिसके वशीभूत होवे वह जैन।